द्रव्य व्यय किया था जो जैन गृहस्थ आप से किसी प्रकार की
प्रार्थना करता था आप उसको निराश नहीं करते थे इसी गु
के माहात्म्य से आप का शुभ नाम दूर देशान्तर में विख्यात हो
गया था, आप विद्या प्रेमी भी अतीव थे जो कोई विद्या के
लिये आप से चंदा मांगता था वह अपनी इच्छानुकूल द्र
पा लेता था श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी ऑल इंडिया जै
कान्फरन्स और पंजाब जैन कान्फरन्स में आप बहुत सा भा
लेते थे दोनों कान्फरन्सों की उन्नति के लिये आप ने बहुत स
द्रव्य व्यय किया यत्र तत्र धार्मिक संस्थाओं का नाम आ
सुनते थे आप उसकी रक्षा के लिये यथा शक्ति द्रव्य
सहायता उस संस्था को पहुंचाते थे कि बहुना जैन धर्म
आपको असीम प्रेम था जैन साधुओं की भक्ति आप के हृ
में बड़ी सुदृढ़ता के साथ अंकित होरही थी । आप उन
यथोचित सेवा भक्ति करके लाभ उठाते थे । विद्यार्थी साधु
के लिये भी आप की ओर से सुचारु प्रबन्ध शीघ्र ही होजा
था । हा शोक ! काल की कैसी विचित्र घटना है एक परम
[illegible]स्मार्गी जैन युवक को समय [illegible] प्रकार से न देख सका य
कारण था [illegible] संसार से आप संवत् १० ३० आप
[illegible] मिल को और आप
[illegible] सन्तान तथा अपने सब परिवार को वियो
[illegible] स्वर्गवासी बन गये परन्तु काल के
समय भी आपने [illegible] यशोगान करने वाली दान शी

लिये आप के दान किये हुये द्रव्य से मुद्रित किये हैं क्योंकि यह ग्रन्थ कई बार मुद्रित हो भी चुका है परन्तु पाठशालाओं में इस ग्रन्थ को प्रायः प्रत्येक श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ने इस ग्रन्थ को स्थान दिया है अतः इसकी अतीव मांग आने पर आप के पूज्य पिताजी और सुपुत्र ने आपको स्मृति के लिये मुद्रित करवा के श्री संघ पर परम उपकार किया है जिससे वे धन्यवाद के पात्र हैं। अतएव हम उन सब को सहर्ष धन्यवाद देते हुये श्री संघ से आवश्यकीय प्रार्थना किये विना नहीं रह सकते कि धर्म कार्यों में आप लोग भी श्रीमान लाला बाबूलाल जैन का अनुकरण करके जैन धर्म को उन्नति के शिखर पर पहुँचाते हुये अक्षय सुख की प्राप्ति करें और साथ ही श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रतिपादन किये हुये श्री अहिंसा धर्म के प्रचार से जनता में शान्ति स्थापन करें।

निवेदक

जैन कन्या पाठशाला के सभासद्

आता है वह तो इन बातों से निर्लेप है न ही उसका इ
से कोई सम्बन्ध है वह परमात्मा तो मुक्त रूप हमेशा स
चित आनन्द है।

जो लोग यह कहते हैं कि वह जन्म लेता या अव
तार धारण करके इस संसार में आकर दुष्टों का ना
करता है वह सब उस से अज्ञात हैं ईश्वर को क्या आव
श्यकता है कि वह इन झगड़ों में पड़े इस लिये यह कहन
कि यदि कोई मरजावे कि हे ईश्वर तू ने क्या किया उ
इस को मार दिया यह महापाप है जन्म मरण आदि उ
भी सुख दुःख संसार में जीव भोगते हैं वह सब अपने
कर्मों के आधीन हैं इस में किसी का कोई चारा नहीं
इस लिये ईश्वर को ऐसे कामों में दोष देना उलटा पा
का भागी बनना है सो ऐसा मत कहो कि दुःख सु
ईश्वर ही देता है सुख दुःख तो अपना केवल कर्तव्य
है ऐसा समझ कर हे बालको नित्य प्रति ईश्वर का
भजन करते रहो ताकि तुम्हें सदा सुख मिले उसका ज
करने से विघ्न दूर होजाते हैं शान्ति की प्राप्ति होती है
श्रेष्ठ आचार में आत्मा लग जाता है जिस से उसको आ
ज्ञान की प्राप्ति होजाती है सो इस लिये नित्य परमा
का ध्यान अवश्य करना चाहिये।

कपूरचन्द्र ! जब गुरुमहाराज पधारें तब आगे उनको लेने जाना चाहिए । जब वह पधार जाएं तब कथा व्याख्यान आदि कृत्यों में पुरुषार्थ करना चाहिए । जब वह आहार पानी के लिए कृपा करें तब उनको निर्दोष आहार देकर वा दिलवा कर लाभ लेना चाहिए । जब तक वह विराजमान रहें तब तक सांसारिक कार्यों को छोड़ कर उन से हरएक प्रकार के प्रश्नों को पूछ कर संशयों से निवृत्त होजाना चाहिये । क्योंकि जब गुरुमहाराज जी से प्रश्नों के उत्तर न पूछे जाएं तो भला और कौनसा पवित्र स्थान है जिस से सन्देह दूर होसकें ।

हेमचन्द्र ! गुरु भक्ति से क्या होता है ।

कपूरचन्द्र ! प्रियवर ! गुरु भक्ति से—धर्म प्रभाव बढ़ता है परस्पर संघ की वृद्धि होती है बहुत सी आत्माएं गुरु भक्ति में लग जाती हैं जिन से गुरु भक्ति की प्रथा चली रहती है और कर्मों की महा निर्जरा होजाती है अतएव ! गुरु भक्ति अवश्यमेव करनी चाहिये

हेमचन्द्र ! मगर ! जब गुरु जी उपाश्रय में पधार [illegible] तब [illegible] सकते हैं [illegible] फिर [illegible] की क्या आवश्यकता है

कपूरचन्द्र ! [illegible] जब तक [illegible] तब उनके

सामायिक कर रहा है;कोई सम्वर के पाठ को पढ़ रहा है कोई स्वाध्याय द्वारा अपने वा अन्य आत्माओं के संशयों को दूर कर रहा है।

इतने में बाबू कपूरचन्द्रजी जैन बी०ए० अपने किए हुए सामायिक के काल को पूरा हुआ जानकर सामायिक की आलोचना करके शीघ्र ही आसन को बांधकर तय्यार होकर चलने लगे तब बाबू-हेमचन्द्रजी ने पूछा कि-आप आज इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं तब बाबू कपूरचन्द्र जी ने प्रति बचन में कहा कि-आज क्या आपको मालूम नहीं है कि श्रीगुरु महाराज पधारने वाले हैं।

हेमचन्द्र ! जब गुरुमहाराज पधारने वाले हैं तो फिर आप इतनी शीघ्रता क्यों करते हो यहां पर ही ठहरिये ! जिस से गुरू महाराज जी के दर्शन भी होजाएं।

कपूरचन्द्र ! गुरु महाराज के दर्शनों के लिए ही शीघ्रता कर रहा हूं।

हेमचन्द्र ! जब गुरु महाराज के दर्शनों की उत्कण्ठा है तो फिर शीघ्रता क्यों करते हो।

कपूरचन्द्र ! गुरु महाराज की भक्ति के लिए।

हेमचन्द्र ! गुरुमहाराज की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए।

आप सर्व सज्जन जन व्याख्यान में पधार कर धर्म का लाभ उठाइये और हम लोगों को कृतार्थ कीजिये ! जब इस लेख के पत्र नगर में वितीर्ण किये गये तब सैकड़ों नर या नारियें नियत समय पर व्याख्यान में उपस्थित होगए। उस समय स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में मनुष्य जीवन के मुख्य दो उद्देश्य बतलाये-एक तो "सदाचार" दूसरे "परोपकार" इन दोनों शब्दों की पूर्ण रीति से व्याख्या की, तब लोग बड़े प्रसन्न होते हुए स्वामी जी को चतुर्मास की विज्ञप्ति करने लगे परन्तु स्वामीजी ने इस विज्ञप्ति को स्वीकार नहीं किया तब लोगों ने कुछ व्याख्यानों के लिये अत्यन्त विज्ञप्ति की। स्वामी जी ने पांच व्याख्यान देने की विज्ञप्ति स्वीकार करली फिर उन्होंने धर्म विषय, अहिंसा विषय, स्त्री शिक्षा, विद्या विषय, कुरीतिनिवारण विषय, इन पांचों विषयों पर पृथक् २ दिन दो २ घंटे प्रमाण व्याख्यान दिये जिन को सुनकर लोग मुग्ध होगये बहुत से लोगों ने उन व्याख्यानों से अतीव लाभ उठाया। ...ुत से लोगों ने स्वामी जी से अनेक प्रकार के प्रश्नों को पूछ कर अपने २ संशयों को दूर किया।

जब स्वामी जी के विहार करने का समय निकट आ ...तब स्वामी जी ने विहार कर दिया उस समय

सैकड़ों लोग भक्ति के वश होते हुए स्वामीजी को पहुँचाने के वास्ते दूर तक गये। फिर स्वामी जी ने वहां पर भी उन लोगों को अपने मधुर वाक्यों से "प्रेम" विषय पर एक उत्तम उपदेश सुनाया और उसका फलादेश भी वर्णन किया जिसको सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न होते हुए स्वामी जी को वंदना नमस्कार करके अपने २ स्थानों में चले आए।

मित्र वर्ग ! गुरु भक्ति इसी का नाम है जिसके करने से धर्म प्रभावना और कर्मों की निर्जरा होजाये।

अनेक आत्मायें धर्म से परिचित होजाये। सो गुरु-भक्ति सदैव करनी चाहिये गुरुओं का ध्यान भी अपने मन में सदैव रखना चाहिये जैसे कि जिस दिन गुरु देवों ने जिस नगर से विहार किया हो उसी दिन से ध्यान रखना कि वह कबतक यहां पधार जायेंगे। यदि किसी कारण वश से वह नियत समझे हुये समय पर न पधार सके तब किसी द्वारा उनका समाचार लेना उसके अनुसार गुरु देव की फिर सेवा भक्ति करनी यह नियम प्रत्येक गृहस्थ का होना चाहिये।

यद्यपि ! गुरु देव अपनी वृत्ति के विरुद्ध कुछ भी काम नहीं करवाते किंतु गृहस्थों के सदा भाव उनके दर्शनों के

आप सर्व सज्जन जन व्याख्यान में पधार कर धर्म का लाभ उठाइये और हम लोगों को कृतार्थ कीजिये। जब इस लेख के पत्र नगर में वितीर्ण किये गये तब सैकड़ों नर वा नारियें नियत समय पर व्याख्यान में उपस्थित होगए। उस समय स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में मनुष्य जीवन के मुख्य दो उद्देश्य बतलाये एक तो "सदाचार" दूसरे "परोपकार" इन दोनों शब्दों की पूर्ण रीति से व्याख्या की, तब लोग बड़े प्रसन्न होते हुए स्वामी जी को चतुर्मास की विज्ञप्ति करने लगे परन्तु स्वामीजी ने इस विज्ञप्ति को स्वीकार नहीं किया तब लोगों ने कुछ व्याख्यानों के लिये अत्यन्त विज्ञप्ति की। स्वामी जी ने पांच व्याख्यान देने की विज्ञप्ति स्वीकार करली फिर उन्होंने धर्म विषय, अहिंसा विषय, स्त्री शिक्षा, क्रिया विषय, कुरीतिनिवारण विषय, इन पांचों विषयों पर पृथक २ दिन दो २ घंटे समास व्याख्यान दिये जिन को सुनकर लोग मुग्ध होगये बहुत से लोगों ने इन व्याख्यानों से अतीव लाभ उठाया। बहुत से लोगों ने स्वामी जी से अनेक प्रकार के प्रश्नों को पूछ कर अपने संशयों को दूर किया।

जब स्वामी जी के विहार करने का समय निकट आ पहुंचा तब स्वामी जी ने विहार कर दिया उस समय

नकड़ों लोग भक्ति के वश होते हुए स्वामीजी को पहुँचाने के वास्ते दूर तक गये। फिर स्वामी जी ने वहां पर भी उन लोगों को अपने मधुर वाक्यों से "प्रेम" विषय पर एक उत्तम उपदेश सुनाया और उसका फलादेश भी वर्णन किया जिसको सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न होते हुए स्वामी जी को वंदना नमस्कार करके अपने २ स्थानों में चले आए।

प्रिय वरो ! गुरु भक्ति इसी का नाम है जिसके करने से धर्म प्रभावना और कर्मों की निर्जरा होजावे।

अनेक आत्मायें धर्म से परिचित होजावें। सो गुरु-भक्ति सदैव करनी चाहिये गुरुओं का ध्यान भी अपने मन में सदैव रखना चाहिये जैसे कि जिस दिन गुरु देवों ने जिस नगर से विहार किया हो उसी दिन से ध्यान रखना कि वह कहां तक पधार जावेंगे यदि किसी कारण वश से वह नियत समय हुये नगर पर न पधार सकें तब किसी द्वारा उनका समाचार लेना उसके अनुसार गुरु देव की फिर सेवा भक्ति करनी यह नियम प्रत्येक गृहस्थ का होना चाहिये

यद्यपि गुरु देव अपनी वृत्ति के विरुद्ध कुछ भी काम नहीं करवाते किन्तु गृहस्थों के सदा भाव उनके दर्शनों

बने रहने चाहियें। और उनके मुख से जिन वाणी सुनने के भी भाव सदैव होने चाहियें। सो यही गुरु भक्ति है।

तृतीय पाठ।

जैन सभा विषय।

वर्द्धमान नगर के एक विशाल चौक में बड़ा ऊंचा एक भवन बना हुआ है जो कि उस बाजार में पहिले वही दृष्टिगोचर होता है उस समय "शान्तिप्रशाद" श्रावक नगर में भ्रमण करता हुआ वहां पर ही आ निकला जब उस स्थान के पास गया तब उसने एक मोटे अक्षरों में लिखा हुआ साइनबोर्ड ([illegible]) देखा जब उसने उसको पढ़ा तब उसको मालूम हो गया कि यह जैनसभा का स्थान है क्योंकि "साइनबोर्ड" पर लिखा हुआ था कि "श्री श्वेताम्बर (स्थानक वासी जैन सभा)"

"उसी समय शान्ति प्रशाद ने विचार किया कि" चलें ऊपर चल कर देखें कि इस नगर की जैनसभा की क्या व्यवस्था है इस प्रकार विचार करके वह ऊपर चला गया तब वह क्या देखता है कि जैन सभा के सभासद

बैठे हुए हैं और बहुत से लोग जैन वा अजैन भी आरहे हैं सभापति जी भी अपने नियत स्थान पर बैठे हुए हैं। सभा बड़ी ही सुसज्जित हो रही है 'मेज़' और 'कुरसी' भी लगी हुई हैं और "मेज़" पर बहुत सी पुस्तकें रक्खी हुई हैं। तब शान्तिप्रसाद ने पूछा कि इस सभा के नियम क्या २ हैं और सभासद वा उपाधिधारी कितने हैं। उस समय सभापति ने उत्तर में कहा कि यह सभा साप्ताहिक है जो प्रत्येक रविवार के दिन छः बजे लगती है और सभापति "उपसभापति" "मन्त्री" "उपमन्त्री" "कोषाध्यक्ष" "समाचार प्रदाता" इत्यादि सभी उपाधिधारी हैं और दो सौ के अनुमान सभासद् हैं सभा की ओर से एक "जैन पाठशाला" भी खुली हुई है और एक "उपदेशक फ़ण्ड भी है" जिससे अनेक उपदेशक नय्यार करके बाहिर धर्म प्रचार के लिए भेजे जाते हैं उन्हों के धर्म प्रचार के [illegible] एक [illegible] रविवार को सब सज्जनों [illegible] और [illegible]

[illegible]

[illegible]

श्रीयुत मन्त्री जी जय जिनेन्द्र !

प्रार्थना है कि-आपकी सभा के उपदेशक पण्डित श्रीयुत····· ········ ········। यहां पर पधारे उन्हों का एक सार्वजनिक व्याख्यान 'जैन संस्कार विधि' पर कराया गया सभा में लोगों की संख्या अतीव थी लोगों ने जैन संस्कार विधि को सुनकर अति हर्ष प्रकट किया । और आनन्द का विषय यह हुआ कि-लाला "प्रमोदचन्द्र" जी ने अपने सुपुत्र "शान्ति कुमार का" जैन संस्कार विधि के अनुसार विवाह किया है और १००० सहस्र रुपये आप के उपदेशक फंड को दान किये हैं जो भेजे जाते हैं कृपया पहुंच से कृतार्थ करें ।

भवदीय—

मन्त्री-मणि द्वीप—

जब मन्त्री जी ने इन दोनों पत्रों को सुना दिया तब लोगों ने अति हर्ष प्रकट किया तब सभापति ने धर्म प्रचार विषय पर एक मनोहर व्याख्यान दिया जिस को सुनकर लोग अति प्रसन्न हुए । तदनु सभा की भजन मंडली ने एक मनोहर जिनस्तुति गाकर सभा का सामाहिक महोत्सव समाप्त किया इस महोत्सव को देखकर शान्ति प्रशाद बड़े प्रसन्न हुए और यह मन में निश्चय किया कि हम

भी अपने नगर में इसी प्रकार अनुकर्ण करते हुये धर्म प्रचार करेंगे ।

चतुर्थ पाठ ।

(भवन जैन कन्या पाठशाला)

आनन्दपुर नगर के एक बड़े पवित्र मौहल्ला में जैन कन्या पाठशाला का स्थान है वहां लौकिक वा धार्मिक दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती है साथ ही शिल्पकला भी योग्यता पूर्वक सिखलाई जाती है इन पाठशाला में सुयोग्य अध्यापकाएँ काम करती हैं कन्याओं की संख्या १०० सौ की प्रति दिन हो जाती है ।

नगर में इस पाठशाला की शिक्षा विषय चर्चा फैली हुई है कि—जैसी इस पाठशाला की पढ़ाई वा प्रबन्ध है ऐसा और किसी पाठशाला का प्रबन्ध नहीं है ।

प्राय: हर एक कन्या वार्षिक महोत्सव में पारितोषिक लेती है और विदुषी बनकर यहां से निकलती हैं ।

आज पाठशाला के वार्षिक महोत्सव का दिन है प्रत्येक कन्या अपने पवित्र वेष को धारण करके आ रही है

चारों ओर झंडियें लगी हुई हैं पाठशाला में "दया सूचक" वैराग्य प्रदर्शक "मनोरंजक" अनेक मनोहर चित्र लटक रहे हैं पाठशाला के कर्मचारी-सभापति आदि भी बैठे हुए हैं तब उसी समय "जिनेन्द्रकुमार" और "देवकुमार" दोनों मित्र भी वहां पहुंच गए आपने श्रीयुत मन्त्री जी की आज्ञा लेकर पाठशाला में प्रवेश किया जब आपने उस भवन को देखा तब आप चकित रह गए और उन कन्याओं की योग्यता देख कर बड़े ही प्रसन्न हुये-सैकड़ों कन्याएं जिनस्तुति मनोहर स्वर से गा रही हैं बहुत सी कन्याएं धर्म शास्त्र की पढ़ाई में पारितोषिक ले रही हैं और श्री भगवान् महावीर स्वामी की जय बोल रही हैं।

नाटक समाप्त होने के पीछे एक 'सरस्वती' नाम वाली कन्या ने जिनेन्द्र स्तुति पढ़ी है परन्तु उसी स्तुति में मनुष्य जीवन के उद्देश्य का फोटो (चित्र) खींच दिया है जिस से उस ने वह पारितोषिक भी प्राप्त किया है उस के पश्चात् एक कन्या पद्मावती ने खड़े होकर स्त्री समाज की ओर लक्ष्य देकर निम्न प्रकार से अपने मुख से उद्गार निकाले, जैसे कि—

मेरी प्यारी बहिनो! आप को यह भली भांति मालूम है कि आज एक महाशुभ दिन है जो प्रति वर्ष में यह

दिन एक ही बार आता है इसमें हमारी वार्षिक परीक्षा
ली जाती है स्त्रीसमाज की वर्तमान में जो दशा होरही
है वह अवश्य शोचनीय है कारण कि हमारी स्त्री समाज
अशिक्षित प्रायः बहुत है इसी कारण से वह अवनति दशा
को प्राप्त होरही है जो पूर्व समय में जिस स्त्री को रत्न कहा
जाता था आज वह स्त्री स्त्रीसमाज में भार रूप होरही
है उसका मूल कारण यह है कि मेरी बहनें ! अपने कर्तव्यों
को भूल गई हैं केवल 'गप' 'पति से लड़ाई' 'अति तृष्णा
सास से विरोध' तथा जो पड़ोसी हैं उन से अनमेल सदा
रखती हैं सारा दिन घर के काम काज को छोड़ कर व्यर्थ
निंदा, चुगली, हर एक बात में हठ का झूठ इत्यादि व्यर्थ
बातों में दिन व्यतीत करती हैं ।

जो प्राचीन स्त्रियों ने जीवन पवित्र बनाना था
उसको छोड़ ही दिया है भला यदि ये बनना भी चाहतीं ही
था नाम है। जो संतान उत्पन्न हुई है उनके नाम की दशा
देखने से पता लगता है जैसे पुत्री को अयोग्य.
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

शिक्षा दी जावे तो लड़ाई करने में ढील ही क्या है।

कभी वह समय था कि–हमारी बहनें ! पति का मा[न]
देती थीं। सासु सुसरे को देव की नाईं पूजती थीं। घ[र]
की लक्ष्मी कहलाती थीं, सुख दुःख में सहायक बनती थीं
उनकी कृपा से घर एक स्वर्ग की उपमा को धारण कि[ये]
रहता था।

यदि पति किसी कारण से घबराहट में भी आजात[ा]
था तो वह घर में आकर स्वर्गीय आनन्द मानता था
आज यदि पति घर में शान्ति धारण किए हुए भी आत[ा]
है तो घर में आते ही भाड़ की आग के समान तप्त ह[ो]
जाता है। कारण कि–हमारी बहनें ! आज कल खानपा[न]
की भूखी हैं। वस्त्रों की भूखी हैं। आभूषणों की भूख[ी]
हैं। एकान्त रहने की भूखी हैं। मान की भूखी हैं। इतन[ा]
ही नहीं किन्तु लड़ाई की भूखी तो बहुत ही है। जिससे
घर वाले या मुहल्ले वाले सब तंग आजाते हैं यह सब कारण
हमारी समाज के अवनति के ही है।

जब लौकिक कार्यों में ऐसी दशा है तो भला धर्म
विषय तो कहना ही क्या है। जैसे कि घर के काम काज
हमें बिना देखे न करने चाहिए। खानपान के पदार्थ भी
[बि]ना देखे ग्रहण न करने चाहिए। जैसे कि मेरी बहुत

सी बहनें ! दाल, शाक, वा चुन्न, आदि के पकाते समय कीड़ी, सुसरी. आदि जीवों को न देखती हुई उन्हें भी शाक आदि पदार्थों के साथ ही प्राणों से विमुक्त कर देती हैं। जिस से खाना ठीक नहीं रहता और कई प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं। अतः मेरी प्यारी बहनों ! हमें हर एक कार्य में सावधान रहना चाहिए। हमारा पतिव्रत धर्म सर्वोत्कृष्ट है जैसे हरएक प्राणी को अपने जीवन की इच्छा रहती है। उसी प्रकार हम को अपना जीवन भी पवित्र बनाना चाहिये। जिस से कि हम औरों के लिये आदर्श रूप बन जाएं। पवित्र जीवन धर्म से ही बन सकता है सो हम को धर्म कार्यों में आलस्य न करना चाहिये। बलकि-सम्वर-सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, दया आदि शुभ क्रियाएं करनी चाहिएं मुनि महाराजों के वा साध्वियों के, नित्यप्रति दर्शन करने चाहिएं और उनके व्याख्यान नियमपूर्वक सुनने चाहिएं जो मिथ्यात्व के कर्म हैं जैसे शीतला पूजन. देवी पूजन, मढियां पूजन, श्राद्ध कर्म, इत्यादि कर्मों से चित्त हटाना चाहिये। पुत्र जन्म, विवाह आदि शुभ कार्यों में जो धार्मिक संस्थाओं को दान दिये जाते हैं साथ ही रजोहरण, वा रजोहरणी, मुख-वस्त्रिका, आसन, माला, इत्यादि धार्मिक उपकरणों का

ही उत्तम शब्दों में और संक्षेप में वर्णन किया है जिसका सारांश इतना ही है कि-हमें गृहस्थावास में रहते हुए प्रेम से जीवन निर्वाह करना चाहिये जैसे एक राजा ने अपनी सुशीला कुमारी से पूछा कि-हे पुत्री ! मैं तुम्हारा विवाह संस्कार करना चाहता हूं किन्तु मुझे तीन प्रकार के वर मिलते हैं जैसे कि-रूपवान् ! विद्वान् ! और धनवान् ! इन तीनों में से जिन पर तेरा विचार हो सो तू कह तब कन्या ने इसके उत्तर में कहा कि-हे पिता जी मुझे तीनों की इच्छा नहीं है। तब पिता ने फिर कहा कि हे पुत्री ! तेरी इच्छा किस पर है। उसने फिर प्रतिवचन में कहा कि-हे पिता जी ! जो मेरे से "प्रेम" करे मुझे तो उसी की इच्छा है" सो इस कहानी का सारांश इतना ही है कि-हरएक कार्य प्रेम से ठीक बन सकता है-प्रेम से ही" यह संस्था कार्य कर रही है इसका हिसाब किताब इस प्रकार से है इस तरह संस्था का पूर्ण वृतान्त कह चुकने पर शान्ति देवी ने यह भी कहा कि-हमें जो स्त्रियां किसी प्रकार का दान पुत्र उत्पन्न होने पर या विवाह अथवा मृत्यु आदि संस्कारों या सम्वत्सरी आदि पर्वों पर देती हैं "हम उन से समायिक करने की "पोथियां" आनुपूर्वियां" "आसन" "रजोहरनियां" "मुखवस्त्रिकायें" माला"

आदि मंगवा कर स्त्रियों में ही बांट देती हैं" और जो जैन विधवा" बहनें जो कि-हर तरह से अशक्त हैं उनको सहायतार्थ कुछ देदेती हैं इस प्रकार यह संस्था काम कर रही है सो जिस बहन को चाहिये वह धर्म पुस्तकें और सामायिक करने का सामान ले सकती हैं और जो जैन विधवा स्त्री सहायता के योग्य हो उसका पता हमें देकर उसको सहायता पहुंचा सकती है इस प्रकार शान्ति देवी के कह चुकने पर फिर सभापतिने यथा योग्य सब कन्याओं को पारितोषिक देकर वार्षिक महोत्सव समाप्त किया जय ध्वनि के साथ महोत्सव मनाया गया इस दृश्य को देख कर जिनेन्द्रकुमार" वा" देवकुमार" बड़े ही प्रसन्न हुए और उन्होंने निश्चय किया कि हम भी अपने नगर में इसी प्रकार जैन कन्या पाठशाला स्थापन करके धर्मोन्नति करें क्योंकि धर्मोन्नति का यह बड़ा ही उत्तम मार्ग है इस के द्वारा धर्म प्रचार भली भांति से हो सकता है।

पांचवां पाठ।

हैं ! नन्दा १ भद्रा २ जया ३ तुच्छा ४ पूर्णा ५ इन को तीन वार गिनने से यही पंच दश दिवस तिथियें होती हैं।

पंच दश रात्रि तिथियें यह हैं जैसे कि-अग्रवती १ भोगवती २ यशोमती ३ सर्वसिद्धा ४ शुभनामा ५ इन को तीन वार गिनने से यही पंच दश रात्रि तिथियें कही जाती हैं। और एक वर्ष के बारह मास होते हैं उन के नाम दो प्रकार से कथन किए गए हैं जैसे कि-लौकिक-और लोकोत्तर-जो लोक में सुप्रसिद्ध हो उन्हें लौकिक नाम कहते हैं जो केवल शास्त्रों में ही प्रसिद्ध हो उन्हीं का 'लोकोत्तर' नाम है। सो लौकिक नाम बारह मासों के यह हैं जैसे कि-श्रावन १ भाद्रव २ आश्विन ३ कार्त्तिक ४ मृगशीर्ष ५ पौष ६ माघ ७ फाल्गुण ८ चैत्र ९ वैशाख १० ज्येष्ठ ११ आषाढ़ १२ अपितु लोकोत्तर नाम यह हैं जैसे कि अभिनन्द १ सुप्रतिष्ठ २ विजय ३ प्रीतिवर्द्धन ४ श्रेयान् ५ शिव ६ शिशिर ७ हिमवान् ८ वसन्तमास ९ कुसुमसंभव १० निदाघ ११ वन विरोधी । वन विरोध) १० यह [illegible] नाम [illegible] होते हैं अपितु सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र के [illegible] सूत्र के इस सूत्र की टीका में लिखा है कि- प्रथम श्रावणमासोऽभिनन्दः इत्यादि इन नामों का सिद्ध होता है कि जिन को [illegible]

व्रत रूप धर्म का पालन करते हैं जो इन्हों के लिये जैन सूत्रों में बतलाये गये हैं क्योंकि हर एक जीव शान्ति की खोज में लगा हुआ है अपनी समाधि की इच्छा रखता है किन्तु पूर्ण ज्ञान न होने के कारण से वेद पृथक् २ मार्ग की अन्वेपणा करते हैं।

जैसे किसी ने शान्ति वा 'समाधि' धनकी प्राप्ति होने से ही समझी हुई है इसी लिये वह सदैव धन इकट्ठे करने में ही लगा हुआ है किसी ने समाधि विषय विकार में जानी हुई है इस लिये 'वह काम भोगों में आसक्त हो रहा है' किसी ने समाधि अपने परिवार की वृद्धि ही में मानली है अतः वह इसी धुन में लगा हुआ है 'किसी ने समाधि' सांसारिक कलाओं के जानने में मानली है सो वह उसी कला के ध्यान में लगा रहता है तथा किसी ने 'व्यापार' जुआ मांस मदिरा शिकार वेश्यासंग पर स्त्री सेवन चोरी इत्यादि कामो मे ही सुख मान लिया है इस लिए वेह पूर्वोक्त कामो मे ही लगे रहते है वा बहुत से लोगों ने अनार्य क्रियाओं के करने मे ही वास्तविक मे शान्ति समझी है इसी लिये वेह अनार्य कर्मो मे ही लगे रहते है।

वास्तव मे उन लोगो ने पूर्ण प्रकार से शान्ति के [illegible] लिये वह शान्ति की खोज

विरमण" महाव्रत प्रतिपादन किया है उसका भाव यह है कि-साधु मन वचन और काय से हिंसा करे नहीं औरों से हिंसा करावे नहीं हिंसा करने वालों की अनुमोदना भी न करे यह अहिंसा का सर्वोत्कृष्ट महाव्रत है जिसने इस का ठीक पालन किया वह आत्मा अपना सुधार कर सकता है वह सब का हितैषी है अहिंसा प्राणीमात्र की माता है इस की कृपा से अनंत आत्मा मोक्ष होगए हैं वर्तमान में बहुत से आत्मा मोक्ष प्राप्त कर रहे हैं भविष्यत काल में अनंत आत्मा मोक्ष प्राप्त करेंगे जिनका शत्रु वा मित्र पर समता भाव होता है अहिंसा धर्म पालन करने वाले प्राणी की यही पूर्ण परीक्षा है कि यदि हिंसक जीव भी उसके पास चले जावे तो वह अपने स्वभाव को छोड़ कर दयालु भाव धारण कर लेते हैं।

सत्य महाव्रत ।

अहिंसा [illegible] करते हुए [illegible] सत्य महाव्रत [illegible] जिस आत्मा ने इस महाव्रत का [illegible] है वह सब [illegible] सिद्ध कर सकता है [illegible] सत्य [illegible] सत्य आत्मा का [illegible] है [illegible] आत्मा का [illegible]

मित्र है इस की रक्षा के लिये ! क्रोध-भय-लोभ-हास्
इन कारणों को छोड़ देना चाहिये। साधु मन वचन का
से मृषा वाद को न बोले न औरों से बोलाए जो मृष
वाद (झूठ) बोलते हैं उनकी अनुमोदना भी न क
क्योंकि असत्यवादी जीव विश्वास का पात्र भी नहीं रहत
अतएव ! इस महाव्रत का धारण करना महान् आत्माउ
का कर्तव्य है।

दत्त महाव्रत।

सत्य को पालन करते हुए चौर्य परित्याग तृती
महाव्रत का पालन भी सुख पूर्वक हो सकता है यह मह
व्रत शूरवीर आत्मा ही पालन कर सकते हैं बिना आ
किसी वस्तु का न उठाना यही इस महाव्रत का मुख्य का
है किसी स्थान पर कोई भी साधु के लेने योग्य पदा
पड़ा हो उसे बिना आज्ञा न ग्रहण करना इस महाव्रत क
यही मुख्योपदेश है मन वचन काय से आप चोरी क
नहीं औरों से चोरी कराए नहीं चोरी करने वालों की अ
मोदना भी न करे तथा चोरी करने वाले की जो द
लोक में होती है वह सब के प्रत्यक्ष है इस लिए म
महात्मा इस महा व्रत का विधि पूर्वक पालन करते हैं

ब्रह्मचर्य महाव्रत ।

इस महा व्रत का पालन ब्रह्मचारी ही पूर्णतया कर सकता है इस लिये चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत कथन किया गया है ब्रह्मचारी का ही मन स्थिर होसकता है ब्रह्मचारी ही ध्यान अवस्था में अपने आत्मा को लगा सकता है ।

सर्व अधर्मों का मूल मैथुन ही है इसका त्याग करना शूरवीर आत्माओं का ही काम है इससे हर एक प्रकार की शक्तियें (लब्धियें) प्राप्त हो सकती है यह एक अमूल्य रत्न है। सब नियमों का सारभूत है ब्रह्मचारी को देव गण भी नमस्कार करते हैं जगत् में यह महाव्रत पूजनीय माना जाता है ।

अतएव ! मन वाणी और काय से इस को धारण करना चाहिये क्योंकि–चारित्र धर्म का यह महाव्रत प्राण भूत है निरोगता देने वाला है चित्त की स्थिरता का मुख्य कारण है इन के धारण करने से हर एक गुण धारण किये जा सकते है ।

इस लिये ! मुनियो के लिये यह चतुर्थ महाव्रत धारण करना आवश्यकीय बतलाया गया है सो मुनि जन आप तो मैथुन सेवन करे नही औरो को इस क्रिया का उपदेश न करें । जो मैथुन क्रिया करने वाले जीव हैं उन के मैथुन की अनुमोदना न करे मनुष्य देव पशु इन तीनों

रात्रि भोजन परित्याग।

फिर जीव रक्षा के लिये या संतोष वृत्ति के लिये रात्रि भोजन कदापि न करे रात्रि भोजन विचार शीलों के लिये अरोग्य बतलाया गया है रात्रि भोजन करने में अहिंसा व्रत पूर्ण प्रकार से नहीं पल सकता अतः दया वास्ते निशा भोजन त्यागना चाहिये तथा मुनि अन्न की जाति, पानी की जाति, मिठाई आदि की जाति, चूर्ण आदि की जाति, इन चारों आहारों में से कोई भी आहार न करे।

इतना ही नहीं किन्तु सूर्य की एक कला दब जाने से भी रात्रि भोजन के त्याग में दोष लग जाता है यदि रात्रि भोजन परित्याग वाले जीव को रात्रि में मुख में पानी भी आजावे फिर वह उस पानी को बाहिर न निकाले फिर भी उसको दोष लग जाता है इस लिये रात्रि भोजन से विरक्त सर्व प्रकार से रहना चाहिये

[illegible] करावे, [illegible] अनुमोदना [illegible]

ईर्या समिति ।

फिर यत्नों के साथ गमन क्रिया में प्रवृत होना चाहिये क्योंकि-यत्न क्रिया ही सयम के साधन हारी है दिन को बिना देखे नहीं चलना रात्रि को रजोहरण के बिना भूमि प्रमार्जन किए नहीं चलना क्योंकि-धर्म का मूल यत्न ही है इस लिए अपने शरीर प्रमाण आगे भूमि को देखकर पैर रखना चाहिये । और चलते हुए बातें न करनी चाहिए खान पान करना न चाहिये । स्वाध्याय भी न करना चाहिये । ऐसे करने से यत्न पूर्ण प्रकार से नहीं रह सकता यद्यपि गमन क्रिया का निषेध नहीं किया गया किन्तु अयत्न का निषेध अवश्य किया हुआ है ।

भाषा समिति ।

जब गमन क्रिया में अयत्न का निषेध किया गया है तो बोलने का भी यत्न अवश्य होना चाहिये । मुनि भाषा समिति के पालन करने वाला बिना विचार किये कभी भी न बोले तथा जिस शब्द के बोलने से पाप लगता होवे और दूसरा दुःख मानता होवे उस प्रकार की भाषा मुनि न बोले यद्यपि भाषा सत्य भी है किन्तु उस के बोलने से यदि दूसरा दुःख मानता होवे तो वह भाषा मुख से न

निकालनी चाहिये जैसे काणे को काणा कहना इत्यादि भाषाएं न बोलनी चाहिये ।

क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, हास्य, भय, मोह, इन के वश होकर वाणी न बोलनी चाहिये कारण कि जब आत्मा पूर्वोक्त कारणों के वश होकर बोलता है तब उन का सत्य व्रत रहना कठिन हो जाता है । इस लिये सत्यव्रत की रक्षा के लिये भाषा समिति का पालन अवश्य ही करना चाहिये । जिस आत्मा को भाषा बोलने का विवेक होता है वह दूसरों का नाश कर देता है जब बोलने का विवेक हो गया तो फिर—

एषणा समिति ।

भोजन का विवेक भी अवश्य होना चाहिये । जैसे कि— मुनि निर्दोष भिक्षा द्वारा जीवन व्यतीत करे शास्त्रों के [illegible] की गई हैं उन्हीं के अनुसार [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

यद्यपि चलनादि क्रियाओं में यत्न पहले भी कथन किया गया है किन्तु इस समिति में वस्तु का उठाना वा रखना इत्यादि कार्यों में यत्न प्रति पादन किया गया है जब इस प्रकार यत्न किया गया तो फिर—

परिष्ठापना समिति।

जो वस्तु गेरने में आती है जैसे मल मूत्र थूक–श्लेष्म आदि वा पानी आदि जो २ पदार्थ गेरने योग्य हों तो उस समय भी यत्न अवश्य ही होना चाहिये क्योंकि–यदि इन क्रियाओं में यत्न न किया गया तो जीव हिंसा और घृणा उत्पादक स्थान बन जाता है अतएव ! परिष्ठापना समिति में यत्न करना आवश्यकीय है तथा जिस स्थान पर मल मूत्र आदि अशुभ पदार्थ बिना यत्न गेरे हुए होते हैं वह स्थान भी घृणा स्पद हो जाता है लोग भी इस प्रकार की क्रियाओं के करने वालों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं मल मूत्र आदि पदार्थों से जीव उत्पत्ति विशेष होजाती है इस लिये जीव हिंसा भी बहुत लगती है तथा दुर्गन्ध के विशेष बढ़ जाने से रोगों की उत्पत्ति की भी सम्भावना की जा सकती है अतएव ! परिष्ठापना समिति विषय विशेष सावधान रहना चाहिए।

उससे पूछो तब वह यही उत्तर प्रदान करेगा कि—मेरे समान कोई भी दुःखी नहीं है. अब देखना इस बात का है—यदि धन परिवारादि के मिलने से ही शान्ति होती तो वह पदार्थ उस को प्राप्त हो रहे थे। तो फिर उसे क्यों दुःख मानना पड़ा. इस का उत्तर यह है कि—चित्त की शान्ति प्रवृत्ति में नहीं है. निवृत्ति में ही चित्त की शान्ति हो सकती है इस लिये जब चित्त की शान्ति होगी तब ही संयम का जीव आराधक हो सकता है, यद्यपि संयम शब्द की हर एक प्रकार से व्याख्या की गई है परन्तु सम-उपसर्ग—और "यम्" धातु "अच्" प्रत्यय से ही संयम शब्द बनता है सो जिसका अर्थ यही है। ज्ञान पूर्वक निवृत्ति का होना जब सम्यग् ज्ञान से तृष्णा का निरोध किया जावेगा तब ही आत्मा अपने संयम का आराधक बन सकता है तथा मनोगुप्ति द्वारा हर एक प्रकार की शक्तिये भी उत्पन्न कर सकता है। मेस्मेरेजम विद्या एक मन की शान्ति का ही फल है सो जब मनोगुप्ति होगी तब वचन गुप्ति का होना स्वाभाविक बात है।

वचन गुप्ति।

वचन वश करने से सब प्रकार के क्लेश मिट जाते हैं प्रायः क्लेशों की उत्पत्ति वचन के ही कारण से हो जाती

मैं मन से कंदमूल नहीं खाऊंगा पर वह अपने हाथों से वनस्पति का स्पर्श करता है और वचन से औरों को उपदेश देता है कि-तुम अमुक फल खा लो परन्तु स्वयं उस का मन खाने का नहीं है इसी प्रकार यदि वचन से प्रत्याख्यान किया हुआ है तब उस का मन और काय से प्रत्याख्यान नहीं है तथा आप अमुक कार्य नहीं करूंगा पर उसके औरों से कार्य कराने वा औरों के किए हुए कार्यों की अनुमोदना करना इन बातों का त्याग नहीं है इस से सिद्ध हुआ कि-जिस प्रकार से प्रत्याख्यान कर लिया है फिर उसको उसी प्रकार पालन करना चाहिये।

यदि कोई समय स्वयं ज्ञान नहीं है तो गुरु को उचित है कि-प्रत्याख्यान करने वाले को प्रत्याख्यान के भेदों को समझा देवे जब इस प्रकार से कार्य किया जाएगा तब करने से दोष नहीं लगेगा अब इसी क्रम को आगे कहते हैं।

[illegible] का ज्ञान हर एक व्यक्ति को होना चाहिए जिससे वह [illegible] करने से समर्थ होजाए।

और यह [illegible] देखते हैं आहार का [illegible] होते हैं जैसे कि करना, कराना अनुमोदन इनको करण कहते हैं मन, वचन और काय को योग कहते हैं

सुगम बोध के लिए एक इन के विषय का यंत्र दिया जाता है। यथा—

अंक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३
भांगा	९	९	३	९	९	३	३	३	१
करण	१	१	१	२	२	२	३	३	३
योग	१	२	३	१	२	३	१	२	३

भांगा—९वां १८वां २१वां ३०वां ३९वां ४२वां ४५वां ४८वां ४९वां यही इन भांगे को जानने का यंत्र है अब इन के उच्चारण करने की शैली लिखी जाती है जैसे कि—

अंक ११ का १ करण १ योग से कहना चाहिये— यथा—करूं नहीं मनसा १ करूं नहीं वयसा (वचसा) २ करूं नहीं कायसा (कायेन) ३ कराऊं नहीं मनसा ४ कराऊं नहीं वयसा (वचसा) ५ कराऊं नहीं कायसा (कायेन) ६ अनुमोदूं नहीं मनसा ७ अनुमोदूं नहीं वयसा (वचसा) ८ अनुमोदूं नहीं कायसा (कायेन) ९ ॥ इस प्रकार एकादश अंक के नव भांगे बनते हैं किन्तु इनके इस [illegible] करने की शैली चली आती है इस लि

(वयसा) "कायसा" यह दोनों शब्द प्राकृत भाषा के ज्यों के त्यों ही रक्खे गये हैं किन्तु पाठकों को चाहिये कि बालकों को इन के अर्थ समझा दें कि-"वयसा" वचन से "कायसा" काय से प्रत्याख्यान आदि करता हूं आगे भी सर्व भांगों के विषय इसी प्रकार जानने चाहियें।

२ अंक १२ वां-भांगे नव एक करण दो योग से कहने चाहिये। जैसे कि—करूं नहीं मनसा वयसा करूं नहीं मनसा कायसा करूं नहीं वयसा कायसा कराऊं नहीं मनसा वयसा कराऊं नहीं मनसा कायसा कराऊं नहीं वयसा कायसा अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा अनुमोदूं नहीं वयसा कायसा।

३—अंक एक १३-का भांगे ३ एक १ करण ३ योग से कहने चाहिये—जैसे कि—करूं नहीं मनसा वयसा कायसा १ कराऊं नहीं मनसा वयसा कायसा २ अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा कायसा ३।

४—अंक-एक २१ का भांगे ९। दो करण एक योग से कहने चाहिए जैसे कि करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं वयसा २ करूं नहीं कराऊं नहीं कायसा ३ करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा ४ करूं नहीं अनुमोदूं नहीं वयसा ५ करूं नहीं अनुमोदूं नहीं-

८—अंक एक ३२ का भांगे ३। तीन करण दो योग से कहना चाहिये। करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा २ करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वयसा कायसा ३।

९—अंक ३३ का भांगा १ तीन करण तीन योग से कहना चाहिये। जैसे कि—करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा कायसा १।

इस प्रकार ४९ भांगों का विवरन किया गया है। हर एक नियम करने वाले को इनका ध्यान रखना चाहिये। जैसे कि—जब भांगों के अनुसार नियम किया जायगा। तब नियम का पलना बहुत ही सुगम होगा और उसके पालने का ज्ञान भी ठीक रहेगा जब प्रत्याख्यान की विधि को जानता ही नहीं तब उसके शुद्ध पालने की क्या आशा की जा सकती है अतएव ! इनको कण्ठस्थ अवश्य ही करना चाहिये।

इनका पूर्ण विवरण देखना होवे तो मेरे लिखे हुए पच्चीस बोल के थोकड़े के ४९वें बोल से देखना चाहिये।

तथा श्री भगवती सूत्र में इनका विस्तार पूर्वक कथन किया गया है जब कोई आत्मा प्रत्याख्यान करता है तब

(पाप मय) योगों का ही त्याग किया गया है तब उत्त-रोत्तर गुणों की प्राप्तिरूप अन्य चारित्रों का वर्णन किया जाता है इस लिए ! सामायिक चारित्र में पुरुषार्थ अवश्य ही करना चाहिये और इस चारित्र के दो भेद किये गये हैं जैसे देश चारित्र वा सर्व चारित्र सो देश चारित्र गृहस्थ गुरु पूर्वक ग्रहण कर सकते हैं सर्व चारित्र मुनि जन धारण करते हैं सो गृहस्थों को देश चारित्र में विशेष परि-श्रम करना चाहिये जिस से वह सुगति के अधिकारी बनें।

पाठ आठवां।

(संयतराजर्षि का परिचय)

[illegible]

वन" ऐसा प्रसिद्ध था, नाना प्रकार के सुन्दर वृक्षों का आलय था, विविध प्रकार लतायें जिसकी प्रभा को उत्तेजित कररही थीं, जिन में षट्ऋतुओं के पुष्प विद्यमान रहते थे, अनेक प्रकार के पक्षीगण अपने २ मनो रञ्जक राग अलाप रहे थे, मृगों की पंक्तियें भोलीभाली मुखाकृति को लिए इतस्ततः धावन कररहीं थीं, जिनके पिय लोचन चलते हुए पथिकों के हृदयों को अयस्कान्त के समान आकर्षण कर लेते थे, कहां तक उस वन की उपमा लिखें यावत् जो पुरुष उसको एकबार देखलेता था, वह अपने जन्म को उस दिन से ही सफल समझता था।

सो पूर्वोक्त नगर में अति प्रभावशाली, पुण्य पुंज, परम विख्यात् "संयत" नामक राजा राज्य अनुशासन करता था, जिसका पूर्व भाग्योदय से धन, धान्य, सेना, वाहन, अश्व, गजादि राज्य के योग्य सर्व सामग्री पूर्णतया प्राप्त थी, एकदिन वह राजा चतुर प्रकार की सेना को साथ लेकर आखेटक निमित्त अर्थात् शिकार खेलने के लिए केशरी वन मे गया, वहां एक परम सुन्दर श्याम वर्णीय मृग दृष्टिगोचर हुआ, और वहकर राजा से गुप्त होने की चेष्टा करके भागगया, किन्तु भागता हुआ अपनी मनोहरता की आकर्षण शक्ति का बान राजा के हृदय में

आकीर्ण स्थान में इकेले ही ध्यान कररहे थे, तदनन्तर राजा मुनि को देखकर भयभीत होगया, और विचार करने लगा कि-मुझ मंदभागी ने मांस के स्वाद के वास्ते इस मुनि के मृग को मारदिया, सो यह महत् अकार्य हुआ, यदि यह मुनि क्रोधित होगए तो फिर मेरे दुःख की सीमा न रहेगी, ऐसा सोचकर अश्व का विसर्जन करके (त्याग करके) मुनि महाराज के समीप आया, और सविनय वंदना नमस्कार (प्रणाम) की, मुख से ऐसे बोला कि-हे भगवन्! मेरे अपराध को क्षमा करो, मुनि मौन वृत्ति में ध्यान कररहे थे, इस कारण उन्होंने राजा को कुछ भी उत्तर न दिया, अतः अपने ध्यान में बैठे रहे, मुनि के न बोलने से राजा भयभीत होगया, तथा भयभ्रान्त होकर इस प्रकार भाषण करने लगा कि हे भगवन्! मैं कांपिल्यपुर का संयत नामक राजा हूं, इसलिए! आप मेरे से वार्तालाप करें हे स्वामिन्! आप समान साधु क्रुद्ध होने पर [illegible] करोड़ों, पुरुषों को [illegible] आपको क्रुद्ध न होना [illegible]

[illegible] श्रवण करके मुनि ने [illegible] किसी प्राणी को

भी भय न उपजाऊं तथा जो मेरे से भय करें, उनका भय दूर करूं, इसी प्रकार शास्त्रों का उल्लेख है, (निर्भय करना परम धर्म है) ऐसा विचार कर मुनि बोले,–हे राजन् ! भय मतकर ! मैं तुझे अभय दान देता हूं, तूभी जीवों को अभय दान प्रदान कर, किसी प्राणी को दुःखित करना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है।

हे पार्थिव ! इस क्षणभंगुर, अनित्य, संसार में स्वल्प जीवन के वास्ते क्यों प्राणी वध करता है।

हे नृप ! एकदिन सर्वराष्ट्र अन्तःपुरादिक, भाण्डागारादिक त्यागने पड़ेंगे, और परवश होकर परलोक को जाना पड़ेगा, फिर ऐसे अनित्य संसार को देखकर भी क्यों राज्य में मूर्च्छित होकर जीवों को पीड़ित करने से स्वआत्मा को पापों से बोझल कररहा है।

हे महीपते ! जिस जीवित तथा रूप से तू इतना मुग्ध हो रहा है, और परलोक के भय से निर्भय होरहा है, वह आयु तथा शरीर की सौन्दर्य विद्युत के समान चंचल है, यौवन नदी के वेग की उपमा वाला है, जीवन तृणाग्नि के समान स्वल्पकाल का है, भोग शरदऋतु के मेघों की छाया सदृश है, मित्र, पुत्र, कलत्र, भृत्यवर्ग, सम्बन्धी इत्यादि सब स्वप्न तुल्य हैं।

हे महीपते ! इस प्रकार की व्यवस्था को देख कर भी क्यों वैराग्य को प्राप्त नहीं होता, अर्थात् इन सांसारिक विनाशी. क्षणिक. अध्रुव सुखों के ममत्त्व भाव को त्याग कर कैवल्य रूपी नित्य ध्रुव सुखों की प्राप्ति का प्रयत्न कर।

इस प्रकार मुनि के परम वैराग्य उत्पादक, स्वल्पाक्षर, बहुत अर्थ सूचक, शराव (प्याले) में सागर को भरने की कहावत को चरितार्थ करने वाला, सत्योपदेश श्रवण करके, वह संयत राजा अत्यन्त संवेग को प्राप्त हुए, और गर्द भालि नामक अनगार के समीप वीतराग धर्म में दीक्षा के लिए उपस्थित होगए, राज्य को त्याग दिया, तथा मुनि के पास दीक्षित होकर उन्हीं के शिष्य होगए। अपितु साध्वाचारादि तथा तत्त्व ज्ञान को गुरु के पास से अध्ययन प्रारम्भ किया।

बुद्धि की प्रगल्भता से स्वल्पकाल में ही तत्त्वज्ञान जैसे कठिन विषय के पारगामी होगए। एकदा गुरु की आज्ञा शिरोधार्य्य करके आप अकेले ही विहार करगये. मार्ग में [illegible] [illegible] मुनि मिले जोकि—महान् विद्वान् थे उन से [illegible] [illegible] वार्तालाप हुआ. तथा. उन्होंने आपको [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] के इतिहास अतीव विस्तार पूर्वक [illegible] [illegible] [illegible].

में पूर्व से भी अधिक दृढ़ किया, जिनका विस्तीर्णविस्तार जैन सूत्र श्रीमदुत्तराध्ययन के अष्टादशवें अध्याय में पूर्ण तया विद्यमान है, जिस महाशय को अधिक वृत्तान्त देखने की अभिलाषा हो, वह पूर्वोक्त सूत्र के उक्त अध्याय की स्वाध्याय करें, यहां केवल परिचय मात्र ही लिखा गया है। तथा यही इस चित्र का परिचय है।

नोट — [illegible]

प्रश्न	उत्तर
	और अपना नाश करसकता है।
यह दोनों असम्भव कार्य हैं इन्हें ईश्वर क्यों करे।	मित्रवर! जब सर्वशक्तिमान् मानते हो फिर यह असंभव क्यों होसकते हैं।
असम्भव कार्य ईश्वर नहीं करता।	क्या-बिना माता पिता के सृष्टि की रचना करना यह असम्भव कार्य नहीं है।
माता पिता के बिना सृष्टि का उत्पन्न कर देना कोई असम्भव बात नहीं है क्यों-कि-बहुतसी सृष्टि बिना माता के ही उत्पन्न होती दिख पड़ती है जैसे मेंडक सृष्टि बिना माता पिता के [illegible] है	मंत्र! मेंडक सृष्टि! वर्षा के निमित्त से उत्पन्न होती है क्योंकि जिस पृथिवी में मेंडक उत्पन्न होने के परमाणु होते हैं उसी में वर्षा के कारण म [illegible] कर्मों के कारण से [illegible] और उत्पन्न [illegible] है [illegible] यदि [illegible] वर्षा के [illegible] आदि [illegible] किन्तु

प्रश्न	उत्तर
	मेंढकों की उत्पत्ति उस जल में नहीं देखी जाती अतः सिद्ध हुआ वर्षा केवल निमित्त मात्र होती है वास्तव में उन जीवों की योनि वही है।
जैसे वनस्पति सम्मूर्छिम उत्पन्न होजाती है उसी प्रकार सृष्टि के विषय में भी जानना चाहिए।	मित्रवर! वनस्पति आदि जीवों की जैसे योनि होती है वह उसी प्रकार उस योनि में पानी आदि निमित्तों के द्वारा उत्पन्न होजाते हैं किंतु बिना माता पिता के पुत्र उत्पन्न कभी भी नहीं होसकता।
मनुष्यों की सृष्टि के विषय में जैन शास्त्र क्या बतलाते हैं।	जैन [illegible] में लिखा है कि [illegible] नियम [illegible] के पर [illegible] में [illegible] होती [illegible] को [illegible]

प्रश्न	उत्तर
	के पश्चात् मल मूत्र की पर्याय को प्राप्त होजाते हैं फिर वही मल मूत्र खेत आदि स्थानों में पड़ कर फिर अन्नादि पर्याय को प्राप्त होजाते हैं।
मनुष्यों का पर्याय किस प्रकार परिवर्त्तन होता है।	मनुष्यों का पर्याय समय२ परिवर्त्तन होता रहता है,और स्थूल पर्याय–यह है जैसे–बाल, युवा और वृद्ध।
मनुष्य आदि क्या अनादि हैं।	मनुष्य आदि भी है और अनादि भी है।
किस प्रकार अनादि और आदि है।	जीव अनादि है मनुष्य की पर्याय आदि है जैसे जब मनुष्य उत्पन्न हुआ उस समय उसकी आदि हुई और जब मृत्यु होगया तब मनुष्य की पर्याय का अन्त होगया
क्या हर एक जीव इसी प्रकार से माने जाते हैं।	हां हर एक जीव इसी प्रकार माने जाते हैं जैसे

प्रश्न	उत्तर
	के पश्चात् मल मूत्र की पर्याय को प्राप्त होजाते हैं फिर वही मल मूत्र खेत आदि स्थानों में पड़ कर फिर अनादि पर्याय को प्राप्त होजाते हैं।
मनुष्यों का पर्याय किस प्रकार परिवर्त्तन होता है।	मनुष्यों का पर्याय समय२ परिवर्त्तन होता रहता है,और स्थूल पर्याय–यह है जैसे–बाल, युवा और वृद्ध।
मनुष्य आदि क्या अनादि हैं।	मनुष्य आदि भी है और अनादि भी है।
किस प्रकार अनादि और आदि है।	जीव अनादि है मनुष्य की पर्याय आदि है जैसे जब मनुष्य उत्पन्न हुआ उस समय उसकी आदि हुई और जब मृत्यु होगया तब मनुष्य की पर्याय का अन्त होगया
क्या हर एक जीव इसी प्रकार से माने जाते हैं।	हां हर एक जीव इसी प्रकार माने जाते हैं जैसे

प्रश्न	उत्तर
	कर्मों का सम्बन्ध है वह अनादि सान्त हैं क्यों कि-कर्मों को क्षय करके मोक्ष जाएंगे ।
सादि अनन्त पदार्थ कौन सा है।	जिस समय ! जो जीव मोक्ष में जाता है उस समय उसकी आदि होती है परन्तु वह अपुनरावृत्ति वाला होता है इस लिये उसे सादि अनंत कहा जाता है।
सादि सान्त पदार्थ कौन२ से हैं ।	चारों जातियों के जीवों का पर्याय सादि सान्त हैं तथा पुद्गल द्रव्य का पर्याय सादि सान्त है ।
चारो जातियों के जीवों की पर्याय सादि सान्त कैसे है ।	नारकीय १ देव २ मनुष्य ३ और तिर्यञ्च ४ इन जीवों के उत्पन्न और मृत्यु धर्म के देखने से यही निश्चय होता है कि इनका पर्याय सादि सान्त है और जीव की अ…

प्रश्न	उत्तर
	अनादि अनन्त है।
पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं।	जिसके मिलने और बिछुरने का स्वभाव है यावन्मात्र पदार्थ हैं वे सर्व पुद्गल द्रव्य हैं और यह रूप है।
प्रमाण किसे कहते हैं।	जो सर्व अंश ग्राही हो अर्थात् सर्व प्रकार से पदार्थों का वर्णन करे।
प्रमाण कितने हैं।	दो।
उनके नाम बताओ।	प्रत्यक्ष प्रमाण १ और परोक्ष प्रमाण २।
प्रत्यक्ष प्रमाण कितने प्रकार से वर्णन किया गया है।	दो प्रकार से।
उनके नाम बतलाओ।	इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण १ और नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण
इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं।	जो पांचों इन्द्रियों के प्रत्यक्ष होवे जैसे जो शब्द सुनने में आते हैं वह श्रोत्रेन्द्रिय के प्रत्यक्ष होते हैं, जो रूप के

प्रश्न	उत्तर
	पुद्गल देखने में आते हैं, वह चक्षुरिन्द्रिय के प्रत्यक्ष हैं उसी प्रकार पांचों इन्द्रियों के विषय में जानना चाहिये । अर्थात् जिन पदार्थोंका पांचों इन्द्रियों द्वारा निर्णय किया जाता है उन्हें ही इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं ।
नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ।	नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो इन्द्रियों के विना सहारे केवल आत्मा द्वारा ही पदार्थों का निर्णय किया जाए ।
नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान कितने प्रकार से वर्णन किया गया है ।	दो प्रकार से ।
उनके नाम बतलाओ ।	देश प्रत्यक्ष १ और सर्व प्रत्यक्ष २
देश प्रत्यक्ष किसे कहते है।	जिस आत्मा के ज्ञान

प्रश्न	उत्तर
	णीय और दर्शनावर्णीय क के सर्वथा आवरण दूर न हुए हैं किन्तु देश मात्र आ रण दूर होगया है सो व आत्मा जिन पदार्थोंका निर्ण करता है वा अपने आत्म द्वारा उन पदार्थों को देखत है उसे ही देश प्रत्यक्ष कहते हैं
देश प्रत्यक्षके कितने भेद हैं। वे कौन २ से हैं।	दो भेद। अवधि ज्ञान नो इन्द्रिय देश प्रत्यक्ष और मनः पर्यय ज्ञान नो इन्द्रिय देश प्रत्यक्ष।
अवधि ज्ञान देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जो रूपि पदार्थ हैं वह उन को अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष देखता है किन्तु जो धर्मादि द्रव्य है उनको वह अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं देखता।
मनः पर्याय ज्ञान देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जो मन के पर्यायों को भी जान लेता है मन के पर्यायों

प्रश्न	उत्तर
	को (भावा) जानता है।
नो इन्द्रिय सर्व प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं।	नो इन्द्रिय सर्व प्रत्यक्ष ज्ञान केवल ज्ञान का नाम है क्योंकि केवल ज्ञान क्षायिक भाव में होता है इसी ज्ञान वाले को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कहते हैं।
प्रत्यक्ष ज्ञान कैसा होता है।	यह अति निर्मल और विशद होता है केवल आत्मा पर ही इसकी निर्भरता है इन्द्रियों की सहायता की यह ज्ञान इच्छा नहीं रखता इसी लिए ? इस ज्ञान को अतीन्द्रिय ज्ञान भी कहते हैं ज्ञानावरणीय ? दर्शनावरणीय ? कर्मों के क्षय से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है।
परोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं।	जो इन्द्रियादि के सहारे से प्रादुर्भूत हो और फिर आत्मा द्वारा उन का प्रमाण

प्रश्न	उत्तर
	णीय और दर्शनावर्णीय कर्म के सर्वथा आवरण दूर नहीं हुए हैं किन्तु देश मात्र आवरण दूर होगया है सो वह आत्मा जिन पदार्थोंका निर्णय करता है या अपने आत्मा द्वारा उन पदार्थों को देखता है उसे ही देश प्रत्यक्ष कहते हैं।
देश प्रत्यक्षके कितने भेद हैं। वे कौन २ से हैं।	दो भेद। अवधि ज्ञान नो इन्द्रिय देश प्रत्यक्ष और मनः पर्यय ज्ञान नो इन्द्रिय देश प्रत्यक्ष।
अवधि ज्ञान देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जो रूपि पदार्थ हैं वह उन को अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष देखता है किन्तु जो धर्मादि द्रव्य हैं उनको वह अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं देखता।
मन पर्याय ज्ञान देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जो मन के पर्यायों को जान लेता है मन के पर्या

प्रश्न	उत्तर
	की सहायता से उत्पन्न होता है उसे ही "तर्क" ज्ञान कहते हैं।
अन्वय किसे कहते हैं।	जिसके होने से दूसरे पदार्थ की सिद्धि पाई जावे जैसे आग होने से धूआं होता है उसे अन्वय कहते हैं।
व्यतिरेक किसे कहते हैं।	जिसके न होने से दूसरे पदार्थ की भी असिद्धि होजावे जैसे आग के न होने से धूम भी नहीं होता।
अन्वयका दूसरा नाम क्याहै	उपलब्धि।
व्यतिरेक का दूसरा नाम या है।	अनुपलब्धि।
अनुमान किसे कहते हैं।	साधन के द्वारा जो साध्य का ज्ञान होता है उसे ही अनुमान कहते हैं
कहते हैं।	जो [illegible] के साथ [illegible] नाभावापन्न से निश्चित हो.

प्रश्न	उत्तर
	सहित निर्णय किया जाए।
परोक्ष ज्ञानके कितने भेद हैं। ये कौन २ से हैं।	पांच—५ स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क अनुमान और आगम (शास्त्र)
स्मृति ज्ञान किसे कहते हैं।	पहिले संस्कार से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे स्मृति ज्ञान कहते हैं—जैसे यह वही देवदत्त है इत्यादि।
प्रत्यभि ज्ञान किसे कहते हैं।	जो-प्रत्यक्ष और स्मृति की सहायता से उत्पन्न होता है उस ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं जैसे कोई पुरुष किसी के पास खड़ा है तो उसको देखने वाले ने कहा कि यह वही पुरुष है जिसको मैंने वहां पर देखा था या गौ के सदृश यह नीलगाय है इत्यादि।
तर्क ज्ञान किसे कहते हैं।	जो अन्वय और व्यतिरेक

प्रश्न	उत्तर
	न मके उसेही हेतु कहते हैं।
अविना भाव किसे कहते हैं।	जो सहभाव नियम को और क्रम भावको नियम को धारण किए हुए हो।
सहभाव नियम किसे कहते हैं।	जो सदैव साथ २ ही रहे पदार्थ उसी का नाम सह भाव नियम होता है। जैसे—रूप में रस अवश्य ही होता है तथा "व्याप्य" और व्यापक पदार्थों में अविना भाव सम्बन्ध होता है जैसे वृक्षत्व "व्यापक" और शिश पात्व व्याप्य है।
क्रम भाव नियम किसे कहते हैं।	पूर्व चर और उत्तर पदार्थों में तथा कार्य कारणों में क्रम भाव नियम होता है जैसे-कृतिका उदय पहले होता है और उसके पीछे रोहिणी का उदय होता है तथा अग्नि

प्रश्न	उत्तर
	के बाद धुआं होता है इस प्रकार के भावों का तर्क से निर्णय किया जाता है।
साध्य किसे कहते हैं।	जो पक्षवादी का माना हुआ हो और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से असिद्ध न किया गया हो। वही साध्य कहा जाता है। अर्थात् जो सिद्ध करना है वही साध्य होता है।
आगम किसे कहते हैं।	जो शास्त्र आप्त प्रणीत हैं वही आगम हैं तथा आप्त के वचन आदि से होने वाले पदार्थों के ज्ञान को आगम कहते हैं।
आप्त किसे कहते हैं।	जो यथार्थ वक्ता हो और राग द्वेष से रहित हो वही आप्त होता है क्योंकि जो जीव राग द्वेष से युक्त है वह कभी भी यथार्थ वक्ता

प्रश्न	उत्तर
	हो सकता । किन्तु जिसक राग द्वेष नष्ट हो गया वास्तव में वही आप्त है औ जो उसके वचन होते हैं उ ही आप्त वाक्य कहते हैं ।
वाक्यार्थ ज्ञान का हेतु क्या है ।	जिसमें तीन बातें पा जावें जैसे-आकांक्षा-योग्यत और सन्निधि—
आकांक्षा किसे कहते हैं ।	एक पद का पदान्तर व्यतिरेक (विशेष) प्रयो किये हुये अन्वय (सम्बन्ध का अनुभव (तजरबा) होना आकांक्षा कहलाती है
योग्यता किसे कहते हैं ।	अर्थ के अबाध (रुकाव का न होना) का ना योग्यता है ।
सन्निधि किसे कहते हैं ।	पदों का अविलम्ब (शीघ्र में उच्चारण करना ।
इसमें कोई दृष्टान्त दो ।	जैसे किसी ने कहा कि

प्रश्न	उत्तर
	शास्त्र शीघ्र पढ़ो। इस वाक्य में आकांक्षा योग्यता–और सन्निधि तीनों का अस्तित्व है तब ही शास्त्र शीघ्र पढ़ो! इस वाक्य से बोध होसकता है–यदि इन तीनों पदों को भिन्न २ता से पढ़ें। जैसे–शास्त्र फिर कुछ समय के पश्चात् "शीघ्र" कह दिया तदनु बहुत समय के पीछे "पढ़ो" इस क्रिया पद का प्रयोग कर दिया इस प्रकार पढ़ने से वाक्य से यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं होसकती अतः उक्त अर्थ वाला ही वाक्य प्रमाण होसकता है।
अभाव किसे कहते हैं	भाव का न होना ही अभाव होता है
अभाव कितने प्रकार के होते हैं	चार।

प्रश्न	उत्तर
	भाव है।
अन्योऽन्या भाव किसे कहते हैं।	जैसे घोड़ा बैल नहीं हो सकता, बैल घोड़ा नहीं हो सकता—जो जिसका वर्तमान में पर्याय है उसका भावपर्यन्त वही रहता है। अन्य नहीं—इसी का नाम अन्योऽन्या भाव है।
प्रतिज्ञा किसे कहते हैं।	जैसे यह पर्वत अग्नि वाला है इस बात की अनुभूति को प्रतिज्ञा कहते हैं।
हेतु किसे कहते हैं।	जैसे यह पर्वत अग्नि वाला इस लिये है कि—इस से धुआं निकलता है इसको हेतु कहते हैं।
उदाहरण किसे कहते हैं।	जैसे जो जो धूम वाला होता है सो सो आग वाला होता है, यही उदाहरण है।
उपनय किसे कहते हैं।	जो उदाहरण का प्रमाण

प्रश्न	उत्तर
	है वही विशद उपनय कहलाता है।
निगमन किसे कहते हैं।	जैसे जो जो धूम वाला होता है सो सो आग वाला होता है उसी प्रकार यह पर्वत भी धुएं के देखने से निश्चित होगया है कि—यह भी आग वाला है।
अनुमान प्रमाण के मुख्य कितने भेद हैं।	तीन।
उनके नाम बतलाओ।	पूर्ववत् १, शेषवत् २, दृष्टि साधर्मवत् ३।
पूर्ववत् किसे कहते हैं।	जैसे किसी माँ का पुत्र बाल्यावस्था में कहीं चला गया था फिर वह अपने नगर में आया तब उसकी [illegible] उसके [illegible] चिह्नों को देखकर निश्चय किया कि यह मेरा ही पुत्र है तथा

प्रश्न	उत्तर
	बाद का ज्ञान धूम के चिह्न देखने से आग का ज्ञान इत्यादि को पूर्ववत् कहते हैं।
शेषवत् के कितने भेद हैं।	पांच।
उनके नाम बतलाओ।	कार्य, कारण, गुण, अवयव, आश्रय।
कार्य किसे कहते हैं।	कारण से कार्य का ज्ञान होना जैसे शंख के शब्द से शंख का ज्ञान इत्यादि।
कारण किसे कहते हैं।	कारण से कार्य की उत्पत्ति होना जैसे तंतुओं से वस्त्र, मृत्पिण्ड से घट इत्यादि।
गुण किसे कहते हैं।	सुवर्ण निकष से जाना जाता है अर्थात् कसौटी पर सुवर्ण के गुण देखे जाते हैं पुष्प गंध से जाना जाता है, लवण रस से इत्यादि
अवयवज्ञान किसे कहते हैं	अवयव से अवयवी का ज्ञान होजाता है जैसे

प्रश्न	उत्तर
	भृंगी का ज्ञान, दाँतों से हाथी का ज्ञान, मोर पिच्छी से मोर का ज्ञान, खुर से घोड़े का ज्ञान, दो पद से मनुष्य का ज्ञान, केशर से सिंह ज्ञान, एक सिक्थ मात्र के देखने से चावलों के पकने का ज्ञान, कवि का एक गाथा के बोलने से कवित्व का ज्ञान, इत्यादि अवयवों से अवयवी का ज्ञान होता है।
आश्रय ज्ञान किसे कहते हैं	जैसे धूम से आग का ज्ञान, बगुला से जल का ज्ञान, [illegible] से वृष्टि का ज्ञान, [illegible] से [illegible] का [illegible] [illegible] का आश्रय ज्ञान कहते हैं।
[illegible] कहते हैं	[illegible]

प्रश्न	उत्तर
	विशेष दृष्ट २
सामान्य दृष्ट किसे कहते हैं।	जैसे एक पुरुष है उसी प्रकार और पुरुष भी होते हैं तथा जैसे एक मुद्रा होती है उसी प्रकार और मुद्रा भी होती हैं।
विशेष दृष्ट किसे कहते हैं।	जैसे किसी ने-किसी को किसी स्थान पर देखा तो उसने यह निश्चय किया कि मैंने इसको अमुक स्थान पर देखा था यह वही पुरुष है इत्यादि प्रत्यभिज्ञान को विशेष दृष्ट कहते हैं।
जब तुम प्रवाह से संसार को अनादि मानते हो तो फिर यह प्रासादादि प्रवाह से अनादि क्यों नहीं हैं।	प्रियवर! पुद्गल द्रव्य के पर्याय ही सादि सान्त भी तो बतलाया गया है सो जब जैन शास्त्र ही इन कार्यों को सादि सान्त मानते हैं तो फिर इन प्रासादादि को अ

प्रश्न	उत्तर
	से अनादि बने बनाए कैसे माने-तथा यह प्रमादादि प्रवाह से बनाने अनादि चले आते हैं किन्तु पर्याय से आदि हैं-जैसे-प्रवाह से मनुष्य अनादि चले आते हैं तद्वत् ही उन की कृतियें क्रियाएं भी प्रवाह से अनादि हैं।
हमारे विचार में बिना बनाये तो कोई वस्तु नहीं बन सकती।	प्रियवर ! जब तुम जीव ईश्वर और प्रकृति को अनादि मानते हो तो बतलाइये यह बिना बनाये कैसे बन गये।
जैन धर्म का मन्तव्य क्या है।	जैन धर्म का मन्तव्य यही है कि इस अनादि संसार चक्र में अनादि काल से जीव अपने किये हुए कर्मों द्वारा जन्म मरण करते चले आये हैं अपितु वेद कर्म

प्रश्न	उत्तर
	प्रवाह से अनादि हैं पर्याय से कर्म आदि हैं उन कर्मो को सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र, द्वारा क्षय करके मोक्ष प्राप्ति करना है।
सम्यग् ज्ञान किसे कहते हैं।	सच्चा ज्ञान—"यथार्थ ज्ञान"।
सम्यग् दर्शन किसे कहते हैं।	सच्चा श्रद्धान—"यथार्थ निश्चय"।
सम्यग् चारित्र किसे कहते हैं।	सच्चा आचरण "यथार्थ चारित्र"।
सम्यग् शब्द किस लिये जोड़ा गया है।	संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय, इन दोषों के दूर करने के लिये।
संशय ज्ञान किसे कहते है।	जिस ज्ञान में संशय उत्पन्न हो जाये, जैसे क्या यह, स्थाणु है वा पुरुष है"
विपर्यय ज्ञान किसे कहते	विपरीत ज्ञान, जैसे

प्रश्न	उत्तर
हैं।	में चांदी की बुद्धि तथा मृग तृष्णा का जल।
अनध्यवसाय ज्ञान किसे कहते हैं।	जैसे मार्ग में चलते हुए, पाद में (पैर) में कण्टक लग गया तो फिर यह विचार करना कि-पाद में क्या लगा है इस प्रकार के संशय को अनध्यवसाय कहते हैं।
लक्षण किसे कहते हैं।	अनिधारितु वस्तु समूह में से किसी एक विवक्षित वस्तु का निर्धार कराने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं।
लक्षण कितने प्रकार का होता है।	दो प्रकार का।
उन के नाम बतलाओ	आत्म भूत लक्षण और अनात्म भूत लक्षण"
आत्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो वस्तु के स्वरूप में मिल न हो उस को आत्म भूत

प्रश्न	उत्तर
	लक्षण कहते हैं, जैसे अग्नि का लक्षण उष्णता " यह लक्षण अग्नि का आत्म भूत कहा जाता है।
अनात्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो आत्म स्वरूप से भिन्न हो उसी को अनात्म भूत लक्षण कहते हैं—जैसे, दण्डे वाले को लाओ " यह दण्ड लक्षण" "अनात्म भूत कहा जाता है"।
लक्षण भास किसे कहते हैं।	जो वास्तविक लक्षण तो नहीं हो परन्तु लक्षण सरीखा मालूम पड़े उस को लक्षण भास कहते हैं
अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं	जो लक्ष्य के एक देश में रहे उसको अव्याप्त कहते हैं जैसे गौ का लक्षण सावल पन
अति व्याप्ति दोष किसे	जो लक्ष्य मात्र में रह कर.

प्रश्न	उत्तर
कहते हैं।	अलक्ष्य में भी रहे उस को अति व्याप्ति लक्षण कहते हैं जैसे गौ का लक्षण "पशु-पना" यद्यपि-गौ भी पशु है परन्तु यह लक्षण भैंसादि में भी पाया जाता है इसीलिए यह अति व्याप्ति दोष कहा जाता है।
असम्भव दोष किसे कहते हैं।	जिस का लक्ष्य में रहना किसी प्रकार से भी सिद्ध न हो, जैसे मनुष्य का लक्षण सींग" यह मनुष्य का लक्षण किसी भी मनुष्य में घटित नहीं होता इस लिये इस लक्षण को असम्भवी लक्षण कहते हैं।
स्याद्वादशब्द का क्या अर्थ है ?	यह पदार्थ इस प्रकार से है और इस प्रकार से नहीं है, जैसे जो पदार्थ है वह अपने

प्रश्न	उत्तर
	गुण में सद्रूप है पर गुण में असद्रूप है इस को स्याद्वाद कहते हैं ।
	तथा सब पदार्थ ऐसे भी हैं और ऐसे भी हैं इस प्रकार के कथन को स्याद्वाद कहते हैं
आत्मा का आत्मभूत लक्षण कौनसा है ।	चैतन्यता—उपयोग और बलवीर्य यह दोनों लक्षण आत्मा के आत्म भूत हैं ।
अनात्म भूत लक्षण कौनसा है ।	जैसे "क्रोधी आत्मा" इत्यादि क्योंकि क्रोध के सद्भाव आत्मा के आत्म भूत नहीं हैं किन्तु [illegible]

प्रश्न	उत्तर
	परन्तु आत्मा उन परमाणुओं को छोड़ कर मोक्ष होजाता है या जीवन मुक्त होजाता है।

दशवां पाठ।

श्रमणो पासक विषय।
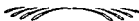
प्रिय मुज्ञ पुरुषो! इस असार संसार में सदा चार ही जीवन है सदाचार से ही सर्व गुणों की प्राप्ति हो सकती है जिस जीव ने सदाचार को मित्र नहीं बनाया उसका जीवन संसार में भार रूप ही होता है " क्योंकि यदि सदा चार से रहित जीवन है तो उसका जीवन पशु के समान ही होता है।

खान, पान, भोग, शीत, उष्ण इत्यादि जो पशु कष्ट सहन करते हैं वही कारण सदाचार से पतित जीव को मिल जाते हैं आदर्श रूप वही जीव बन सकता है जो सदाचार से अलंकृत हो, जिसका जीवन पवित्र नहीं है,

उसका प्रभाव किसी पर पड़ नहीं सकता, धर्म पथ से भी वह गिर जाता है, लोग उस को सुदृष्टि से नहीं देखते हैं।

अतएव ! मनुष्यों के जीवन का सार सदाचार ही है संसार पक्ष में अनेक प्रकार के सदाचार होने पर भी मुनियों की संगति करना और उनकी यथोचित सेवा करना यह परम उच्च कोटि का सदाचार का अंग है, बहुत से आत्मा अच्छे आचार वाले होने पर भी साधु संगति से वञ्चित ही रहते हैं वे सर्व प्रकार से सदाचार के फल को उपलब्ध नहीं कर सकते। ज्ञान और विज्ञान से वे पृथक् ही रह जाते हैं।

इस लिये ! जो साधु गुणों से युक्त मुनि हैं उन्हीं का नाम श्रमण है सदाचारियों के लिये वह "उपास्य" है सदाचारी उस के उपासक होते हैं इसी लिये ! सदाचारियों का नाम. "श्रमणोपासक" कहा जाता है. अपितु सदाचार की प्राप्ति गुणों पर ही निर्भर है।

गुणों की प्राप्ति करना प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य कर्तव्य है यह गुण कहीं से प्राप्त हो जाएं वहीं से ही ले लेने चाहियें।

सज्जनो ! गुण ही जीवन का सार हैं गुणों से ही जीव सत्कार के पात्र बन सकते हैं प्रतिष्ठा भी गुणों से ही मिल सकती है जैन ग्रन्थों में श्रमणोपासक के २१ गुण

वर्णन किए गये हैं जैसे कि—

१ क्षुद्र वृत्तिवाला न होना और अन्याय से धन उत्पन्न न करना क्योंकि-जो अन्याय से धन उत्पन्न करते हैं वे सदाचारियों की पंक्ति में नहीं गिने जाते न वे धन्यवाद के पात्र ही हैं मित्रो ! अन्याय करने का फल कभी भी अच्छा नहीं होता इस लिये अन्याय न करना चाहिये, और क्षुद्र वृत्तिवाला पुरुष सभ्यता से गिर जाता है सदैव पिशुनता (चुगली) में ही लगा रहता है और धर्म कर्म से गिर जाता है इस लिए ! पहिला गुण यही है कि-अक्षुद्र होना । २ रूपवान्-जैसे कोकिला का स्वरूप है कुरूपों का विया रूप है उसी प्रकार मनुष्यों का शील रूप है जो पुरुष शील से रहित होता है वह शरीर के सुन्दर होने पर भी असुन्दर ही गिना जाता है लोगों में माननीय नहीं रहता यदि उसके पास धन भी है तो भी वह सभ्य पुरुषों में निंदनीय ही होता है जैसे रावण अति सुन्दर होने पर भी लोगों में उसकी सुन्दरता नहीं गिनी जाती अपितु जिन पुरुषों ने अपने शील को नहीं छोड़ा और प्रतिज्ञा में दृढ़ रहे हैं वे संसार की दृष्टि में पूजनीय हैं । अतएव ' सदाचारियों का रूपशील है यद्यपि पांचों इन्द्रिय पूर्ण, शरीर निरोग्यता यह भी गुण रूपवान् के गिने जाते

है और इन्हीं गुणों से रूपवान् कहा जाता है परन्तु वास्तव में शील गुण ही प्रधान माना जाता है अतएव ! यह गुण अवश्य ही धारण करने चाहियें।

३ प्रकृति सौम्य–स्वभाव से शुद्ध हृदय वाला होवे क्योंकि जब आधार (भाजन) ठीक होगा तब ही उस में गुण निवास कर सकते हैं जिनकी प्रकृति कठिन वा कुटिल है वे कदापि धर्म के योग्य नहीं हो सकते–स्वच्छ भूमि में ही शुद्ध बीज की उत्पत्ति हो सकती है जो भूमि अशुद्ध है उस में शुद्ध बीज भी अंकुर नहीं दे सकता इसी प्रकार जिस आत्मा का हृदय शुद्ध है प्रकृति सौम्य है वही गुणों का भाजन हो सकता है जैसे पशुओं में गौ–मृग आदि जीव कुटिल प्रकृति वाले न होने के कारण लोगों के प्रेम के पात्र बन जाते हैं और गिदड़ (श्याल) लोमड़ी चीता आदि [illegible] और सौम्य प्रकृति वाले न होने से [illegible] प्रकृति सौम्य [illegible]

[illegible] से प्रिय होना चाहिये [illegible] और [illegible] वाला [illegible] उन गुणों से [illegible] क्योंकि

सज्जनों! इस अवगुण वाला जीव कदापि श्रेष्ठ कर्म में प्रविष्ट नहीं होता जैसे सांप का विष उगलने का स्वभाव होता है ठीक इसी प्रकार क्रूरचित्त वाले जीव का स्वभाव भी निर्दय भाव में ही रहता है अतएव सदाचारी जीव को अक्रूर चित्त वाला ही होना चाहिए।

६-भीरु—पापकर्म के करने से भय मानना यही भीरुशब्द का अर्थ है अर्थात् पापकर्म से सदैव भय मानता रहे जैसे लोग—सांप वा सिंहादि पशुओं से डरते हैं तथा शत्रु से भय मानते हैं व राजादि का भय मानते हैं उसी प्रकार पाप कर्म का भी भय मानना चाहिए क्योंकि जो कर्म किया गया है वह फल अवश्यमेव देगा अतएव! पाप करते भय खाना चाहिए. किन्तु धर्म करते हुए निर्भीक वन जाना चाहिये माता पिता वा राजादि भी यदि धर्म से प्रतिकूल उपदेश दें तो उसे भी न मानना चाहिए किन्तु यदि देवते भी धर्म से गिराना चाहे तो भी न गिरना चाहिये. अतएव सिद्ध हुआ कि पापकर्म करते समय भय युक्त और धर्म करते समय निर्भीक बनना सुपुरुषोंका मुख्य कर्तव्य है.

७ अशठ भक्त न होना जो पुरुष मायावी होते है वह भी धर्म के योग्य नहीं होते क्योंकि—माया छल

से निकल न जावे तब तक आत्मा शुद्धि के मार्ग पर नहीं आ सकता जैसे किसी रोगी के उदर में मल विकार स्थित हो, फिर उस को बल प्रद औषधी भी फलदायक नहीं हो सकती जब तक कि मल न निकल जावे। जब मल निकल जाता है तब उस को औषधियों का सेवन गुणप्रद हो जाता है उसी प्रकार जब आत्मा के अन्तःकरण में माया रूप मल निकल जाता है तब उस में भी ज्ञानादि ठीक ठीक ठहर सकते हैं, इस लिये ! सदाचारी पुरुष माया से रहित होने चाहियें।

८ दाक्षिण्य निपुणता होनी चाहिये क्योंकि—जो पुरुष निपुण होते हैं वही धर्मादि क्रियाएं कर सकते हैं किन्तु जो चतुरतादि गुणों से युक्त हैं उन से धार्मिक और क्रियाएं होनी [illegible] क्योंकि आगमों में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गुणवान् यदि गुणवान् है [illegible] [illegible]

कि–तुम्हें ज्वर नित्य प्रति आता है तो उस ने उत्तर में निवेदन किया कि–डाक्टर साहिब नित्य प्रति तो नहीं आता किन्तु एक दिन आता है और एक दिन नहीं आता तो फिर डाक्टर साहिब ने कहा कि–क्या तुम्हें वारी का ज्वर है तो उस ने उत्तर में कहा कि नहीं साहिब, वारी का ज्वर तो मुझे नहीं है डाक्टर साहिब कहने लगे, कि, भाई, इसी को वारी कहते हैं तो उस मूर्ख ने कहा कि–मैं तो इस को वारी नहीं मान सकता, फिर डाक्टर साहिब ने कहा कि तुम वारी किसे मानते हो तो उसने डाक्टर साहिब से कहा कि डाक्टर साहिब मैं वारी उस को मानता हूं, यदि एक दिन ज्वर आप को चढ़ जाए और एक दिन मुझे चढ़ जाए तब ऐसे हो जाए तो मैं वारी मानूंगा. इतनी बात सुन कर डाक्टर साहिब हँस पड़े इससे सिद्ध हुआ कि मूर्ख किसी का नाम नहीं है जो हित की बात नहीं समझत वही मूर्ख है गृहस्थ को दाक्षिण्य होना चाहिये।

लज्जालु अकार्यों में लज्जा करने वाला. पाप कर्म करते समय लज्जा करना चाहिये लज्जा से ही गुण। क प्राप्त हो सकते हैं जो पुरुष निर्लज्ज होते हैं वे पाप कर्मों में प्रवेश कर जाते हैं, इस लिए माता, पिता, गुरु, स्थविर वृद्ध इत्यादि की लज्जा करनी चाहिये. पापों

पात न करना चाहिये तथा यदि मित्र कुपथ में खड़ा हुआ है और शत्रु ठीक मार्ग पर स्थित है तो उस समय गुणों का पक्षपात करना चाहिये।

अपितु हठ करना अच्छा नहीं है- जो पुरुष गुणों का पक्षपाती है वह सब का ही मित्र है, किन्तु वह किसी का भी शत्रु नहीं है अतएव ! गुणों का पक्षपात करना सभ्य पुरुषों का मुख्य कर्तव्य है जो गुणों के पक्षपाती नहीं हैं किन्तु राग पक्ष ही दिखा रहे हैं वे धर्म के योग्य नहीं गिने जाते–अतः गुणों का ही पक्षपात करना चाहिये।

१४–सत्कथा सुपक्ष युक्त–सत्कथा करने वाला और स्वपक्ष से युक्त अर्थात्–यथार्थ कहने वाला, शुद्ध जाति वाला वा अपने निर्णय किए हुए सिद्धान्त में दृढ़ता रखने वाला होना चाहिए जब स्वसिद्धान्त में पूर्ण दृढ़ता होजावे तो फिर असत्कथा कदापि न करनी चाहिए, यदि ऐसे कहा जाए कि जब उसका सिद्धान्त दृढ़ है तो फिर वह असत्कथा कैसे कर सकता है तो उसका समाधान इस प्रकार किया जाता है कि सत्य समझता हुआ उपहास्यादि क्रियाओं में असत्कथा कदापि न करे किन्तु यथार्थ ही कहने वाला होवे। तथा जो हर मत वाले असत्कथा करने वाले हैं उनके संग को छोड़ देवे या असत्यकथा करने

वालों की प्रशंसा भी न करे क्योंकि-उनकी प्रशंसा करने
से अज्ञात जन उन्हों पर विश्वास करने लग जाते हैं तब
उसका परिणाम अच्छा नहीं निकलता अतएव ! सिद्ध
हुआ कि-सत्कथा "स्वपक्ष युक्त" होना आवश्यकीय है
तभी गुण आ सकते हैं।

१५-दीर्घ दर्शी-जो कार्य करना हो, पहिले उसका
फलाफल जान लेना चाहिये जब विचार से काम किया
जायगा तब उसमें विघ्नविपत्ता उत्पन्न नहीं होता यदि
हर एक कार्य में औत्सुक्य ही किया जायगा तो फिर न
तो कार्य ही प्रायः सुधरता है और न ही लोगों में प्रतिष्ठा
मिलती है तथा बहुत से कार्य ऐसे होते हैं जिनके करते
समय तो अच्छे लगते हैं किन्तु उनका परिणाम अच्छा नहीं
निकलता और बहुत से कार्य ऐसे भी हैं जो करते समय
तो यश विशेष नहीं मिलता परन्तु परिणाम में उसका नाम
सदा के लिए स्थिर हो जाता है क्योंकि जो बुद्धि काम
विचार कर उत्पन्न होती है यदि वह बुद्धि पहिले ही
उत्पन्न हो जाए न तो लोग ही हंसें और न ही काम बिगड़े
अतएव ! जो कार्य करना हो उसके फलाफल जानने के
लिए दीर्घदर्शी होना चाहिये यदि दीर्घदर्शी गुण उत्पन्न

न किया जायगा तो हरएक काम में प्रायः हंसी का है
होना बना रहेगा ।

१६-विशेषज्ञ-गुण और अगुण के जानने वाला होन
चाहिये । क्योंकि-जो गुण और अगुण की परीक्षा नहीं क
सकता वह कदापि धर्म की परीक्षा भी नहीं कर सकत
जिसकी बुद्धि में पक्षपात नहीं है वही गुण और अवगुण
की खोज में लग जाता है किन्तु जिसकी बुद्धि पक्षपा
से मलीमस हो रही है तो भला फिर वह गुण और अगुण
की परीक्षा कैसे कर सकता है जहां पर तो उसका रा
है वहां पर यदि अगुण भी पड़े हों उसको तो व
गुण ही दिखाई देते हैं यदि उसका राग नहीं है वहां गुण
होने पर भी अवगुण दृष्टि गोचर होते हैं अतएव ! विशेषज्ञ
होना आवश्यकीय सिद्ध हो गया विशेषज्ञ होना ही गुणों
की परीक्षा करना है ।

१७ वृद्धानुग- वृद्धों की शैली पर चलने वाला मात
पिता गुरु आदि के विनय करने से हर एक गुण की प्राप्ति
हो सकती है यदि विनय न किया गया तो हर एक गुण
भी अवगुण हो जाता है जैसे जल के सिंचन करने से
वृक्ष प्रफुल्लित हो जाता है उसी प्रकार विनय से हर एक
गुण की प्राप्ति हो जाती है वृद्धों के पथ पर चलने से

और रूप ही माना जाता है—ज्ञान के साथ परोपकार करना यह परम शूरवीरता का लक्षण है। परोपकारी सर्व स्थानों पर पूजनीय बन जाता है तीर्थंकरों का नाम आज कल इस लिये लिया जा रहा है कि—उन्होंने असीम संसार भर में उपकार किया. लाखों जीवों को सन्मार्ग में स्थापपन किया उसी कारण से वह सदा अमर हैं और सब जीवों के आश्रय भूत हैं अतः परहितार्थकारी बनना गृहस्थ का मुख्य धर्म है।

२१–लब्धलक्ष–माता पिता–गुरु आदि की चेष्टाओं को देख कर उनकी इच्छानुसार कार्य करने और उनको प्रसन्न रखना यही लब्धलक्षता है तथा धर्म दानादि में अग्रणीय बनना इतना ही नहीं किन्तु धर्म कार्यों में अधिक भाग लेना और लोगों को धर्म कार्यों में उत्साहित करना यह सब क्रियायें लब्धलक्षता में ही गिनी जाती है तात्पर्य यह है कि यावन्मात्र श्रेष्ठ कर्म हैं उन में बिना [illegible] के आगे हो जाना. इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि समान कार्यों में लोग अग्रणीय होते ही हैं किन्तु जो [illegible] अग्रणीय बनता है वही एक शूरवीरता का लक्षण है [illegible] दान और अधम दान का परस्पर इतना अन्तर है जैसे अमावस्या और पौर्णमासी का परस्पर

में प्रवीणता के कारण से वह सब स्थानों पर आदर पाता है अतएव ! सब जीवों को विनयवान् होना चाहिये।

१९-कृतज्ञ-कृतज्ञ होना चाहिये-जिसने किसी समय उपकार कर दिया है उसको विस्मृत न करना चाहिये अपितु उसके किये हुए उपकार को स्मरण करके उसका उपकार विशेष मानना चाहिये, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि-चार कारणों से आत्मा अपने गुणों का नाश कर बैठते हैं जैसे कि क्रोध करने से १, और दूसरों की ईर्षा करने से २, मिथ्या हट करने से ३, कृतघ्न होने से ४, कृतघ्नता के समान कोई भी पाप नहीं बतलाया गया इस लिये ! कृतज्ञ होना चाहिये। अपितु जो कृतघ्न होते हैं वे विश्वास पात्र नहीं रहते और जैसे क्रोधी को बुद्धि छोड़ जाती है वा सूके हुए सरोवर को पक्षि छोड़ जाते हैं उसी प्रकार कृतघ्न को सज्जन पुरुष भी छोड़ देते हैं। सो कृतज्ञ भी बनना चाहिये।

२० परहितार्थकारी सब जीवों का हितैषी होना श्रावक का मुख्य धर्म है या-जिस प्रकार उन जीवों को शान्ति पहुंचे अथवा अन्य जीवों के कष्ट दूर होवें उसी प्रकार श्रावक को करना चाहिए। परोपकार ही मुख्य धर्म है जो परोपकार नहीं कर सकता उस का जीवन संसार में

भार रूप ही माना जाता है—ज्ञान के साथ परोपकार करना यह परम सूरवीरता का लक्षण है। परोपकारी सर्व स्थानों पर पूजनीय बन जाता है तीर्थंकरों का नाम आज कल इस लिये लिया जा रहा है कि—उन्होंने असीम संसार भर में उपकार किया, लाखों जीवों को सन्मार्ग में स्थापपन किया उसी कारण से वह सदा अमर हैं और सब जीवों के आश्रय भूत हैं अतः परहितार्थकारी बनना गृहस्थ का मुख्य धर्म है।

२१—लब्धलक्ष—माता पिता—गुरु आदि की चेष्टाओं को देख कर उनकी इच्छानुसार कार्य करने और उनको प्रसन्न रखना यही लब्धलक्षता है तथा धर्म दानादि में अग्रनीय बनना इतना ही नहीं किन्तु धर्म कार्यों में अधिक भाग लेना और लोगों को धर्म कार्यों में उत्साहित करना यह सब क्रियायें लब्धलक्षता में ही गिनी जाती हैं तात्पर्य यह है कि यावन्मात्र श्रेष्ठ कर्म हैं उन में बिना रोक टोक के आगे हो जाना इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि संसारी कार्यों में लोग अग्रणीय होते ही हैं किन्तु जो धार्मिक कार्यों में अग्रणीय बनना है यही एक सत्यवान का लक्षण है। धर्म दान और अधर्म दान का परस्पर इतना अन्तर है जैसे अमावस्या और पौर्णमासी का परस्पर

अन्तर है, इसी प्रकार जो धर्मदान किया जाता है वह तो पौर्णमासी के समान है और जो अधर्मदान है वह अमावस्या की रात्री के तुल्य है। यदि ऐसे कहा जाए कि–धर्मदान कौनसा है और अधर्म कौनसा है तो इसका अन्तर इतना ही है कि–जिस दान करने से धर्म कार्यों में सहायता पहुंचे वा धर्मियों की रक्षा होजावे उसे ही धर्मदान कहते हैं।

"तथा जिस दान करने से अधर्म का पोषण हो और धर्म से विरुद्ध हो वही अधर्म दान कहलाता है जैसे हिंसक पुरुषों की सहायता करना और उनके किए हुये कार्यों की अनुमोदन करना यही अधर्म दान है" सो–धर्मदान करना गृहस्थों का मुख्य धर्म है अतएव ! लब्धलक्ष गुण वाला गृहस्थ को अवश्य ही होना चाहिए।

और गृहस्थों का यह भी नियम शास्त्रों में वर्णन किया गया है कि न्याय से लक्ष्मी उत्पन्न करते हुए गृहस्थों के योग्य है कि यदि वे अपने समान कुल में विवाह करते हैं तब तो वे शान्ति से जीवन व्यतीत कर सकते हैं नहीं तो प्रायः अशान्ति उनकी बनी रहती है तथा देशाचार को जो नहीं छोड़ता है वह भी धर्म से पराङ्मुख नहीं हो सकता यह बात मानी हुई है कि–जिस

ग्यारहवां पाठ ।

(श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी जी)

प्रिय पाठको ! जिस महान् आत्मा का आज हम आप को कुछ परिचय देना चाहते हैं वे परम पूज्य जगत् वंदित श्री भगवान् महावीर स्वामी जी हैं जिन का दूसरा नाम श्री वर्धमान भी है—वह भगवान् जैन धर्म के अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर थे इन का समय चौथे समया-न्तीन का था जिसको आज २५२० वर्ष के लगभग होते हैं वह महात्मा ईस्वी—५२० वर्ष पहिले इस भारतवर्ष के क्षत्रिय कुंडल पुर नामक नगर में था इस समय परम वीर यह पृथ्वी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

चारों ओर वह नगर आगमों और जलाशयों से सुशोभित हो रहा था और व्यापार के लिये वह नगर "केन्द्र-स्थान" बन गया था "वहां पर" न्याय नीति में कुशल "शास्त्र विशारद" सर्व राजाओं के गुणों से अलंकृत–ज्ञात-वंशीय सिद्धार्थ महाराज अनुशासन करते थे जिन के न्याय से प्रजा अत्यन्त प्रसन्न थी इसी कारण से प्रजा की ओर से सर्व प्रकार से उपद्रवों की शान्ति थी कला कौशलता की अत्यन्त वृद्धि होती जाती थी महाराजा सिद्धार्थ का एक छोटा भाई भी था जो "सुपार्श्व" नाम से सुप्रसिद्ध था महाराजा के अन्तरंग कार्यों में सहायक था और महाराजा सिद्धार्थ की राणी का नाम त्रिशला क्षत्राणी था जो स्त्री के गुणों (लक्षणों) से अलंकृत थी।

त्रिशला पतिव्रत धर्म को अन्तःकरण से पालन करती थी इसी लिए सतियों में शिरोमणी थी महाराजा सिद्धार्थ के साथ उस का अत्यन्त स्नेह था जिस से गृह की लक्ष्मी "दिन दो गुनी रात चौगुनी" के न्याय से वृद्धि प्राप्त कर रही थी।

महाराजा के एक "नन्दिवर्द्धन" नाम वाला कुमार था जो ७२ कलाओं में निपुण और रा[illegible] धुरा को प्रेम से उठाए हुए था इसी कारण [illegible] "युवराज"

पदवी का भी धारक था और उस की एक कनिष्ठा भगिणी "सुदर्शना" नामा थी, जो शीलवती और सुशीला थी, महाराजा सिद्धार्थ श्री भगवान् पार्श्वनाथ प्रभु के मुनियों के श्रावक थे, और श्रावक वृत्ति को ममनता पूर्वक पालन करते थे।

एक समय की बात है कि महाराणी "त्रिशला" जब अपने पवित्र राज्य भवन के वास भवन में सुख शय्या में सोई पड़ी थी, तब अर्धरात्रि के समय महाराणी ने १४ स्वप्न देखे जैसे कि—

"हाथी १ वृषभ २ सिंह ३ लक्ष्मी देवी ४ पुष्पों की माला ५ चन्द्रमा ६ सूर्य ७ ध्वजा ८ कलश ९ सरोवर १० क्षीर समुद्र ११ देव विमान १२ रत्नों की राशि १३ अग्नि शिखा १४।" जब राणी जी ने इन चतुर्दश स्वप्नों को देख लिया तब उसकी आंख खुल गई फिर वह अपनी शय्या से उठकर महाराजा सिद्धार्थ के पास गई राजा को मधुर वाक्यों से जगा कर अपने आए हुए चौदह स्वप्नों को विनय पूर्वक निवेदन किया, जिनको सुन कर महाराजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और राणी से कहने लगे कि हे देवी ! तूने यह पवित्र स्वप्नों को देखा है जिसका फल यह होगा कि-हमारी सर्व प्रकार की वृद्धि होते हुए चक्र-

वर्ती कुमार उत्पन्न होगा ।

इस प्रकार राणी को स्वप्न का फल बतला कर प्रातः काल में राजा ने अपने नगर के ज्योतिषियों को बुला कर चौदह स्वप्नों के फलादेश को पूछा तब ज्योतिषियों ने कहा कि हे राजन् ! इन स्वप्नों के फलादेश से यह निश्चय होता है कि आप के घर में एक ऐसे राज कुमार का जन्म होगा जो कि चक्रवर्ती या तीर्थङ्कर देव होगा जिसकी महिमा का विवरण हम नहीं कर सकते तब श्री महाराज ने उन स्वप्न पाठकों को सत्कार और पारितोषिक देकर विसर्जन किया किन्तु उसी दिन से महाराणीजी शास्त्रोक्त विधि के अनुसार गर्भ रक्षा करने लगी फिर सवा नौ मास के पश्चात् चैत्र शुक्ला १३ त्रयोदशी के दिन हस्त उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के योग में आधी रात्रि के समय श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का शुभ जन्म हुआ. जन्म दिन बड़े समारोह के साथ मनाया गया राजा के यहां आपका जन्म होते ही हर प्रकार से सुख बढ़ने लगा और राजा ने उत्साह पूर्वक बहुत सा दान भी किया और प्रजा को पहले की भांति उस से भी बढ़कर हर प्रकार से सुख देने लगा इस प्रकार दिन व्यतीत होने लगे और आप के अन्य संस्कार भी समय २ पर बड़े समारोह से

होते हुये पालना होती रही मगर आप का चित्त इस बाल्यावस्था से ही ले कर संसार से उदास रहता था सदैव यही भाव उत्पन्न रहते थे कि मैं अपनी आत्मा का सुधार करके परोपकार करूं परोपकार ही सत्पुरुषों का धर्म है।

इस प्रकार के भाव होने पर भी माता पिता के अत्यन्त आग्रह से "यशोदा" राज कुमारी से आपका विवाह किया गया फिर आप के गृह में कुमारी का जन्म हुआ जिसका नाम, प्रिय सुदर्शना रक्खा गया परन्तु वैराग्य भाव में जब अत्यन्त भाव उत्कृष्टता में आ गये तब माता पिता के स्वर्ग वास होजाने के पश्चात् ३० वर्ष की अवस्था में आप बड़े भाई "नन्दिवर्द्धन" की अनुमति से दीक्षित हो गये दीक्षा लेते समय ही आप ने यह प्रतिज्ञा करली कि बारह वर्ष पर्यन्त मैं घोर से घोर कष्टों को सहन करूंगा और अपने शरीर की रक्षा भी न करूंगा इतने काल में आपको अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। जिन का कि हृदय इस कदर भयानक है कि उसे लिखना तो दूर रहा उस के सुनने से भी हृदय कांपता है परन्तु यह आपकी ही महान आत्मा और महान शक्ति थी कि जिस ने उसे सहन किया हम प्रिय पाठकों के लिये यहां पर उन के इस जीवन की कुछ घटनायें देते हैं जिन

से कि तुम को ज्ञात होगा कि श्री भगवान् महावीर देव स्वामी कितने उच्च आत्मा थे और परम सहन शील होने के अतिरिक्त कैसे घोर तपस्वी थे यही कारण था कि उन्हों ने महान् से महान् तपस्या करके अपने कर्मों का नाश करते हुये केवल ज्ञान को प्राप्त किया ।

भगवान् महावीर स्वामी के जीवन की कुछ घटनायें ।

१—पाठको ! जिस समय भगवान् महावीर जी ने गृहस्थ आश्रम को त्याग कर संन्यास लेने का ध्यान किया तो उस समय आप के बड़े भाई ने आपको आज्ञा नहीं दी और आप अपने बड़े भाई का हुक्म मानते हुये दो साल और संसार में ठहरे जब आपकी अवस्था ३० साल की हो गई तब आपने अपना राज पाट अपने बड़े भाई को सौंप दिया और अपनी तमाम धन दौलत दान करते हुये अपनी आत्मा के साधन और पर उपकार के लिये [illegible] जब आपने इस प्रकार का वृत्ति धारण कर [illegible] अपने चित्त में इस बात को सोचा कि [illegible] इस के [illegible] कैसे और कब मैं [illegible] यह वेदना [illegible] [illegible] अपनी आत्मा को इस तरह साधन कर कि [illegible] [illegible]

रूपी अग्नि मे कुन्दन होजावे ऐसा विचार करते हुये उन्हों
ने कड़ी से कड़ी तपस्या की जो यहां तक थी कि अपने
जीवन के १२ वर्ष इस तपस्या रूपी मनजिल के पार करने
में आप को लगाने पड़े दो वार तो आपने छः छः मास
पर्यन्त अन्न जल नहीं किया चार चार मास तो आपने
कई वार किये एक वार जब कि आप ध्यान में खड़े थे तो
आप को एक संगम नाम वाला अभव्य देव मिल गया
उस ने ६ मास पर्यन्त आपको भयंकर से भयंकर कष्ट दिये
किंतु आपका मन ऐसा शान्त मय था कि उस पर रोम
मात्र भी क्रोध नहीं किया बल्कि यह विचारा कि यह मेरे
ही कर्मों का फल है जो कुछ भी यह कर रहा है करे मुझे
इस मे चलायमान नहीं होना चाहिये इसका काम मुझे
गिराना है और मेरा कर्तव्य अपने ध्यान मे लगे रहना है
ऐसा ख्याल करते हुये अडिग अपने ध्यान मे ही रहे जब
आप के मन मेरु को वह किसी प्रकार भी हिला नहीं
सका तो उदास सा होकर जाने लगा इतने मे भगवान
का ध्यान पूर्ण होगया पश्चात् आप ने उस देव से
कहा कि हे देव ! तुम निराश क्यों हो निराश तो मैं हूं जो
यह देख कर कि तू मेरे पास आया और केवल खाली ही
नहीं बल्कि रोष रूप हो कर जा रहा है देव ने इन शब्दों

को सुना और सुन कर कहा कि भगवन् ! यह कैसे। भगवान ने कहा कि देव सुन जो मेरे पास आता है वह धर्म रूप उपदेश को सुन कर लाभ उठा लेता है जिससे वह सद्गति का अधिकारी बन जाता है परन्तु तू ने मेरे पास छै मास पर्यन्त रह कर महान अशुभ कर्मों का बन्धन किया जिस का फल तुझे चिरकाल तक दुःख भोगना होगा इस प्रकार उस देव के हित चिंतन करते हुए आप के दया मात्र से नेत्र आर्द्र होगये।

२—श्री महावीर भगवान् ने जो तपस्या धारण कर रक्खी थी उसका समय अभी पूरा न होने के कारण आप अपने कर्मों के क्षय करने के वास्ते अनार्य भूमि में चले गये वहां पर भी अनार्य लोगों ने आपको असीम कष्ट दिये जिन के सुनने से रोमांच खड़े हो जाते हैं एक समय जब कि आप पवन पर ध्यानावस्था में बैठे हुवे थे उन लोगों ने आपको पहाड़ से नीचे गिरा दिया परन्तु आप अपने [illegible] से विचलित नहीं हुवे।

[illegible] आप भिक्षा के लिये [illegible] [illegible] आपके [illegible] [illegible] [illegible] थे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] परन्तु आपका मन [illegible] [illegible] कि [illegible] भी चलायमान नहीं हो सका [illegible]

से श्रवण किया तब वह उस को सहन न कर सके और आपस में विचार करने लगे कि हमें महावीर स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके उन के धर्म को और उन की कीर्ति को उज्ज्वल न होने देना चाहिये जिससे कि हमारे ब्राह्मण धर्म को हानि न हो ऐसा सोच कर वह महावीर स्वामी के पास गये और धर्म सम्बन्धी उन्होंने प्रश्नोत्तर किये जब भगवान् ने अपने केवल ज्ञान के बल से उनके मनों को जानते हुये उनके प्रश्नों के उत्तर दिये तो वह सत्य रूप उत्तर को पाकर वहीं समवसरण (व्याख्यान मंडप) में ही दीक्षित हो गये श्री भगवान् ने एक ही दिन में चौतालीस सौ को दीक्षित किया इन में सब से बड़े इन्द्र-भूति जी महाराज थे जिनका गौतम गोत्र था इस लिये यह गौतम स्वामी के नाम से सुप्रसिद्ध है यही ११ श्री भगवान के मुख्य शिष्य थे इन्होंने चौदह पूर्व रचे जैन धर्म का स्थान २ पर प्रचार किया लाखों लोगों को सत्पथ पर आरूढ़ किया और स्थान २ पर शास्त्रार्थ करके जैन धर्म का झंडा फहराया और श्री भगवान् ने अनेक राजा और राजकुमारों को दीक्षित किया अपने सदुपदेश से चौदह हजार साधु ३६ हजार आर्यायें बनाई लाखों श्रावक बनाये और महाराजा श्रेणिक, कुणिक, चेटक, जितशत्रु, उदायन

इत्यादि महाराजों की आप पर असीम भक्ति थी एक समय की बात है कि आप विचरते हुये चंपा नगरी के बाहिर पूर्ण भद्र उद्यान (बाग) में पधार गये तब महाराजा कुणिक बड़े समारोह के साथ आपके दर्शनों को आये और उनके साथ सहस्रों नर नारियें थीं उस समय आप ने "अर्द्ध मागधी" भाषा में सार्व जन उपदेश दिया जिसका सारांश यह था कि हे आर्यो ! मैं जीव को मानता हूं और अजीव को भी मानता हूं इसी प्रकार पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, और मोक्ष को भी मानता हूं और प्रवाह से संसार अनादि है पर्याय से आदि है सो इस संसार से छूटने का मार्ग केवल सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र ही है अतः इन्हीं के द्वारा जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

हे आर्यो ! शुभ कर्मों के शुभ ही फल होते हैं । और अशुभ कर्मों के अशुभ ही फल होते हैं, जिस प्रकार प्राणी कर्म करते हैं प्रायः कर्मोंके फल भी उसी प्रकार भोगते हैं।

हे भव्य जीवो ! तुम कभी भी धर्म कार्यों में आलस्य मत करो। यह समय पुनः पुनः मिलना अति कठिन है आर्य देश, आर्य कुल, उत्तम संहनन निरोग, शरीर पांचो इन्द्रिय पूर्ण, सुगुरों की संगति, इत्यादि जो आप लोगों

की सामग्री प्राप्त होरही है इस से धर्म का लाभ लो और राज धर्म यही है कि–किसी से भी अन्याय से वर्ताव न किया जाये, प्रजा पर न्याय पूर्वक अनुकंपा करना यही राजों का मुख्य धर्म है परन्तु प्रजा पर तब ही न्याय से वर्ताव होसकता है जब राजा लोग अपने स्वार्थ, और व्यसनों को छोड़ देवें।

हे देवानुप्रियो ! मनुष्य जन्म, शास्त्र श्रवण, धर्म पर दृढ विश्वास–और शास्त्रानुसार आचरण, जब यह चारों अंक जीव को प्राप्त होजावें। तब ही जीव मोक्ष प्राप्ति कर सकता है। इस प्रकार के पवित्र उपदेश को सुनकर सभा अत्यन्त प्रसन्न हुई फिर यथा शक्ति लोगों ने नियमादि धारण किये। राजा बड़ा हर्षित होता हुआ भगवान् को वंदना करके अपने राज भवनों में चला गया।

भगवान महावीर स्वामी और अहिंसा का प्रचार।

जिस समय भगवान महावीर स्वामी का सत्यमयी और संसार में शान्ति स्थान वाला सभा अहिंसक धर्म फैलने लगा तब उस समय के ब्राह्मण लोग जो हिंसा में ही धर्म मानते थे जिनके यहां यज्ञ करना ही केवल महान धर्म

मध के लिये बनाया गया था और उन यज्ञों में घोर हिंसा अर्थात् जो पशुवध होता था वह धर्मानुकूल समझा जाता था और देश में उस समय जिधर भी देखो यज्ञों ही यज्ञों का ज़ोर था हिंसा की इतनी प्रबलता थी कि मानो खून की नदियां बह रही थीं इस अवस्था को देखकर भगवान् महावीर स्वामी का हृदय कांप उठा और उन्होंने इसका विरोध अति ज़ोर शोर से करना प्रारम्भ किया और उन राजाओं ने भी जिनको कि आपने धर्म उपदेश सुना कर अपने अनुयायी कर लिये थे उन्होंने भी अहिंसा का बहुत ही प्रचार किया इस प्रकार आपने उन यज्ञों में होम होते हुवे लाखों पशुओं को बचाया जिन का फल यह हुआ कि इस संसार से ब्राह्मण धर्म के वह हिंसा-मयी यज्ञ उठ गये और अहिंसा धर्म सर्वत्र फैल गया जब इस प्रकार अहिंसा धर्म का ज़ोर बढ़ने लगा और महावीर स्वामी की जय जय कार होने लगी तो फिर ब्राह्मणों ने जैन धर्म से और भी द्वेष करना प्रारम्भ कर दिया यहां [illegible] जैन धर्म [illegible] विरुद्ध [illegible] जैन धर्म [illegible] होती रही

का नाश अवश्य ही होगा जब नाश सिद्ध होगया तब नास्तिक वाद का प्रसंग आजाएगा फिर पुण्य पाप बन्ध मोक्षादि आकाश के पुष्पवत सिद्ध होंगे तथा दोनों का कारण क्या है ? इस प्रकार की शंका होने पर संकर वा अनवस्था दोष की भी प्राप्ति सिद्ध होगी इस लिये यह दोनों वस्तुएँ स्वतः सिद्ध होने से अनादि हैं।

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम भव्य जीव (मोक्ष जाने वाले) हैं वा अभव्य जीव (मोक्ष न जाने वाले) हैं ?

उत्तर–हे रोह ! मोक्षगमन योग्य वा अयोग्य यह भी दोनों प्रकार के जीव अनादि हैं।

प्रश्न–हे भगवन् ! प्रथम मोक्ष है किम्वा संसार है ?

उत्तर–हे रोह ! दोनों ही अनादि हैं।

प्रश्न हे भगवन् ! प्रथम सिद्ध (अजर अमर) है वा संसार है।

उत्तर हे रोह ! संसार आत्मा वा मोक्ष आत्मा यह दोनों अनादि हैं इनको प्रथम वा अप्रथम नहीं कहा जा सकता क्योंकि आदि नहीं है इस लिये मोक्ष आत्मा और संसार आत्मा यह दोनों अनादि हैं। सिद्ध आत्माओं का ही नाम ईश्वर है।

प्रश्न हे भगवन् ! प्रथम अंडा और पीछे कुकड़ी है –

प्रथम कुकड़ी पीछे अंडा है ?

उत्तर- हे रोह ! अंडा कहां से उत्पन्न होता है ? हे भगवन् ! कुकड़ी से। फिर कुकड़ी कहां से उत्पन्न होती है? हे भगवन् ! अंडा से। हे रोह ! जब इस प्रकार से दोनों का सम्बन्ध है तब सिद्ध हुआ कि-यह दोनों प्रवाह से अनादि हैं प्रथम कौन है ? इस प्रकार नहीं कह सकते।

इस प्रकार रोह अनगार ने अनेक प्रश्नों को पूछा श्रीभगवान् ने उनके सर्व संशयों को दूर किया।

एक समय श्री गौतम स्वामी ने श्रीभगवान् से प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! गर्भावास में जीव इन्द्रिय लेकर आता है वा इन्द्रिय छोड़ कर गर्भवास में प्रविष्ट होता है तब श्रीभगवान् ने प्रत्युत्तर में प्रतिपादन किया कि-हे गौतम ! इन्द्रियों को लेकर भी आता है छोड़ कर भी आता है तब श्री गौतम प्रभुजी ने फिर शंका की कि हे भगवन् ! यह कथन किस प्रकार से है तब श्रीभगवान् ने फिर उत्तर दिया कि हे गौतम ! द्रव्य इन्द्रियों को जीव छोड़कर आता है और भावेन्द्रियों को (मनरूप) को जीव लेकर आता है जिसके द्वारा फिर द्रव्य इन्द्रियोंकी निष्पत्ति होजाती है गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया कि हे भगवन् ! जीव शरीर को छोड़कर गर्भावास में आता है व

शरीर को लेकर गर्भावास मे आता है।

तब श्रीभगवान् ने उत्तर में प्रतिपादन किया कि-हे गौतम ! आत्मा शरीर को छोड़कर भी आता है और लेकर भी आता है जैसे कि औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारिक शरीर, इन तीनों शरीरों को छोड़कर तैजस, और कार्मण्य शरीरों को लेकर जीव गर्भावास में प्रवेश करता है क्योंकि कर्मों के भार से जीव इस प्रकार से भारी होरहे हैं जैसे कि-ऋणी पुरुष ऋण के भार से भारी होता है यद्यपि ऋणी के सिरपर प्रत्यक्ष में कोई भी भार नहीं दीखता तथापि उसकी आत्मा भार से युक्त होती है उसी प्रकार जीव को कर्मों का भार है।

इस प्रकार से श्रीभगवान ने ३४ अतिशययुक्त और ३५ वाणी से विभूषित देश २ मे धर्मोद्घोषणा करते हुए अनेक जीवो के संशयो का उच्छेदन किया।

सब [illegible] धर्म का देश में प्रचार किया [illegible] जीवों का वध होरहा था उसका निषेध [illegible] को अभयदान मिल गया [illegible] सुखी होगये [illegible] का दया धर्म [illegible]

साथ [illegible]

करता था जैसे कि—अमृत की वर्षा में कल्पवृक्ष प्रफुल्लित होजाता है।

एक समय की बात है कि—आप देश में दया धर्म का प्रचार करते हुए—कौशाम्बी नगरी के बाहिर एक बाग़ में विराजमान होगए—तब वहां पर "उदायन" नामी राजा भी व्याख्यान सुनने को आगया और राणी आदि अन्तःपुर भी वहां पहुंच गया, व्याख्यान होने के पश्चात् एक जयन्ती नामा राजकुमारी ने आप से निम्नलिखित प्रश्न किये और आपने न्यायपूर्वक उनका निम्नलिखितानुसार उत्तर प्रदान किया। जैसे कि—

जयन्ती—हे भगवन्! भव्य आत्मा स्वभाव से है वा विभाव से?

भगवन्—हे जयन्ती! स्वभाव से है विभाव से नहीं है।

जयन्ती—हे भगवन्! यदि भव्य आत्मा स्वभाव से है तो क्या सर्व भव्य आत्मा मोक्ष हो जायेंगे?

भगवन् हे श्राविके! सर्व भव्य आत्मा मोक्ष प्राप्त नहीं करेंगे क्योंकि वह अनन्त है जैसे आकाश की श्रेणियें अनन्त है उसी प्रकार जीव भी अनन्त है जिस प्रकार उन श्रेणियों का अन्त नहीं आता उसी प्रकार जीवों का अन्त भी नहीं है।

जयन्ती–हे भगवन्! अनन्त शब्द का अर्थ क्या है?

भगवन्–हे जयन्ती! जिसका अंत न हो उसे ही अनंत कहते हैं जब उसका अन्त है तब वह अनन्त नहीं कहा जा सकता। अतएव हे जयन्ती! अनादि संसार में अनादि काल से अनन्त आत्मा निवास करते हैं अनन्त ही होने से उनका अन्त नहीं पाया जाता।

जयन्ती–हे भगवन्! जीव बलवान् अच्छे होते हैं वा निर्बल अच्छे होते हैं?

भगवान्–हे जयन्ती! बहुत से आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं बहुत से निर्बल अच्छे होते हैं।

जयन्ती–हे भगवन्! यह कथन किस प्रकार से माना जाए कि–बहुत से आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं और बहुत से निर्बल—

भगवान्–हे जयन्ती! न्याय पक्षी, धर्मात्मा, धर्म से जीवन व्यतीत करने वाले, धर्म के उपदेशक वा सत्पथ के उपदेशक इस प्रकार के आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं क्योंकि धर्मात्माओं के बल से अन्याय नहीं होने पाता, जीवों की हिंसा नहीं होती पाप कर्म घट जाता है लोग न्याय पक्ष में वा धर्म पक्ष में आरूढ़ हो जाते हैं अतएव धर्मात्मा जन तो बलवान् ही अच्छे होते हैं क्योंकि जब पापियों

बल निर्बल होगा तब श्रेष्ठ कर्म बढ़ जायेंगे किन्तु जब पापी बल पकड़ेंगे तब अन्याय बढ़ जायगा। पाप बढ़ जायेगा, हिंसा, झूठ, चोरी मैथुन, और परिग्रह, यह पाँचों ही आश्रव बढ़ जायेंगे, अतएव पापियों का निर्बल ही होना अच्छा है।

जयन्ती हे भगवन ! जीव सोए हुए अच्छे होते हैं या जागते हुए ?

भगवान हे जयन्ती ! बहुत से आत्मा सोए हुए अच्छे हैं और बहुत से जागते हुए अच्छे हैं।

जयन्ती हे भगवन् ! यह बात किस प्रकार मानी जाए कि बहुत से आत्मा सोए हुए अच्छे हैं और बहुत से जागते हुए अच्छे हैं।

भगवान हे जयन्ती ! धर्म प्रेमी, न्याय करने वाले, सब जीवों के हितैषी समस्त पर जीवों को अपने समान जानने वाले इत्यादि गुण [illegible] जागते ही अच्छे होते हैं [illegible] करने वाले [illegible] इत्यादि [illegible] उनके [illegible] रहती है

इस प्रकार [illegible]

अग्नि द्वारा किया गया है इसलिए भव्य आत्माओं को योग्य है कि श्रीभगवान् की शिक्षाओं से अपने जीवन को पवित्र बनाएं और सब के हितैषी बनें क्योंकि शास्त्रों में श्रीभगवान् सब जीवों के हित के लिये निम्नलिखित आठ शिक्षायें कथन कर गए हैं। जैसे कि—

१ जिस शास्त्र को श्रवण नहीं किया उसको अवश्य श्रवण करना चाहिए।

२ सुने हुए ज्ञान का विस्मृत न करना चाहिए।

३ संयम के द्वारा प्राचीन कर्म क्षय कर देने चाहिएं।

४ नूतन कर्मों का सम्वर करना चाहिए।

५ जिसका कोई न रहा हो उसकी रक्षा करनी चाहिये अनाथों की पालना करनी प्रत्येक का कर्तव्य होना चाहिए।

६ नव शिष्यों को शिक्षाओं द्वारा शिक्षित करदेना चाहिये।

७ [illegible] की [illegible] सेवा करनी चाहिये।

८ [illegible] हो तो उस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुरुषों को [illegible] [illegible] [illegible] जाते हैं। इस [illegible] [illegible] करना चाहिये।

बारहवां पाठ ।

(श्राविका विषय)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! जैसे जैनमत में श्रावक को धर्माधिकारी बतलाया है वा श्रावक को चारों तीर्थो में एक तीर्थ माना गया है तथा जैसे द्रव्य तीर्थ के स्नान से शारीरिक मल दूर होजाता है उसी प्रकार श्रावक वा श्राविका रूप तीर्थ के संग करने से जीव पापों से छुट जाते हैं ।

जब श्रावक बारह व्रतों को धारण करता है तो उस की धर्मपत्नी को भी उचित है कि बारह व्रत धारण करले तब धर्म की साम्यता होने पर उनके दिन आनन्द पूर्वक व्यतीत होते हैं ।

श्रावक और श्राविकाओं को अन्य द्रव्य तीर्थो की यात्रा करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु उन मे बड़े जो और दो तीर्थ हैं वे आनन्द पूर्वक उनकी यात्रा कर सकते हैं जैसे कि—साधु और साध्वी । इनके दर्शनो से धर्म की प्राप्ति होसकती है अर्थो का निर्णय होजाता है और ज्ञान से विज्ञान बढ़जाता है जब विज्ञान होगया तब संयम होता है संयम का फल यही है कि आश्रव से रहित होजाना.

जब जीव आश्रव से रहित होगया तब उसका परिणाम मोक्ष होता है।

मित्रो! श्राविकाओं को जैन शास्त्रों ने धर्म विषय सम्बन्धी वही अधिकार दिये हैं जो श्रावकों को दिये गये हैं अतएव सिद्ध हुआ कि श्रावक और श्राविका का धर्म एक ही है।

धर्म की साम्यता होने पर ही हर एक कार्य में शान्ति रह सकती है जब धर्म में विषमता होती है तब प्रायः हर एक कार्य में विषमता होजाती है।

इसलिए श्राविकाओं को उचित है कि- घर सम्बन्धि काम काज करती हुई यत्न को न छोड़ें जैसे स्त्रियों की शास्त्रों में ६४ कलाएं वर्णन की गई हैं उन में यह भी कला वर्णन की गई है कि जो घर के काम हों उनको भी बिना यत्न किये न करें। चूल्हा, चौका, पानी इत्यादि कार्यों में यत्न बिना कदम न रखना चाहिये। क्योंकि चुल्हादि की क्रिया करने समय यदि विवेक न किया जाएगा तब अनेक जीवों की [illegible] हान [illegible] है तथा पानी की [illegible] आवश्यकता है [illegible] हान की [illegible] नहीं

होसकती क्योंकि-यदि बिना यत्न से काम करते हुए कोई विष वाला जीव चक्की द्वारा पीसा गया तब उस के परमाणुओं से रोग उत्पन्न होजाते हैं जिससे वैद्यों वा डाक्टरों के मुंह देखने पड़ते हैं तथा इस समय जो अधिक रोग उत्पन्न होरहे हैं उसका मूल कारण यही प्रतीत होता है कि खान, पान में विवेक नहीं रहा है इसी वास्ते मशीन द्वारा पीसा हुआ आटा विवेकी पुरुषों को त्याज्य है क्योंकि मशीनों में प्रायः यत्न नहीं रह सकता फिर अनर्थ दण्ड का भी पाप अतीव लगता है जो घरों में अपनी चक्की द्वारा काम किया जाता है उस में अनर्थ दण्ड का पाप तो टल ही जाता है परन्तु यत्न भी हो सकता है और वह अन्न भी स्वच्छ होता है तथा स्वच्छता के कारण रोगों से भी निवृत्ति हो जाती है।

धर्म में भी भाव बने रहते हैं इस लिये स्त्रियों को योग्य है कि-घर के काम बिना यत्न न किया करें।

जिन घरों में यत्न से काम नहीं किया जाता और प्रमाद बहुत ही छाया हुआ रहता है उन घरों में लक्ष्मी की वृद्धि नहीं हो सकती इस लिये [illegible] को योग्य है कि-घर के काम बिना यत्न [illegible] चुल्हे सम्बन्धि काम जैसे बिना देखे [illegible]

गोमय (पाथियां वा थापियां) भी जलानी पड़ती हैं उन्हें भी बिना देखे चूल्हे में न डालें, क्योंकि गोमय में बहुत से सूक्ष्म जीव उत्पन्न हो जाते हैं वा गीले ईंधन में बहुत से जीव होते हैं इस लिये इन कार्यों में विशेष यत्न की आवश्यकता है ।

भोजनशाला की छत पर भी वस्त्राच्छादन की अत्यावश्यकता होती है क्योंकि धूम के छत पर लग जाने से बहुत से जीव उत्पन्न होजाते हैं वा मर्मी (मर्दी) छत पर लगी हुई होती है जब वह भोजनादि क्रियाएं करते समय नीचे गिर जाती है तो फिर रोग के उत्पन्न करने-हारी वा भोजन को बिगाड़ने वाली होती है अतएव सिद्ध हुआ कि भोजनशाला (मंडप) में अत्यन्त यत्न की आवश्यकता है ।

चारपाई वा रथादि भी बिना यत्न से न रखने चाहियें बिना यत्न से इन में भी [illegible] हो जाती है और जो [illegible] हाते हैं इन के [illegible] आच्छादन किये न रखना [illegible] क्योंकि [illegible]

व ही हर एक कार्य ठीक रह सकता है-सन्तान रक्षा, पशु सेवा, स्वामी आज्ञा पालन, इत्यादि कार्य श्राविकाओं को विना विवेक न करने चाहियें। कारण कि-पत्नियों का देव शास्त्रकारों ने पति ही बतलाया है जो स्त्री अपने प्रिय पति की आज्ञा पालन नहीं करती अपितु आज्ञा के अतिरिक्त पति का मानना करती है और असभ्य बर्ताव करती है वह पतिव्रत धर्म से गिरी हुई होती है। और मर कर भी सुगति में नहीं जाती इस लिए श्राविकाओं को उक्त बर्ताव कभी न करना चाहिये। धर्म में सहायक, परस्पर प्रेम, मित्र के समान बर्ताव, सुख दुःख में सहन शीलता, सस्रू, जेठानी आदि से प्रीतिभाव, और अपने परिवार को धर्म में लगाना, नित्य क्रियाओं में लीन रहना, श्री वीतराग प्रभु के धर्म का पालन करना यही श्राविकाओं का मुख्य कर्त्तव्य है, बच्चों को पहले ही धर्म शिक्षाओं से अलंकृत करना और उनको गाली आदि के देने से रोकना इत्यादि क्रियाओं के करने में जब स्त्री की कुशलता बढ़ जाती है तब स्त्री अपने मन पर भी विजय पा सकती है।

जिसकी क्रियाए अनुचित होती है वह स्त्री अपने मन पर विजय नहीं पा सकती उसकी प्रवृत्ति व्यभिचार में लग जाती है अतएव सिद्ध हुआ कि हर्ष पूर्वक धर्म पथ

में अपने प्राण प्यारे पति के साथ समय व्यतीत करना चाहिये। जिसने पति सेवा को ही छोड़ दिया उसने अपने धर्म कर्म को भी तिलाञ्जली दे दी, पति को भी उचित है कि अपनी धर्म पत्नी को दुष्ट मार्ग में प्रवृत्त न करे और विषयानन्दिनी उसको न बनावे किन्तु आप श्रावक धर्म में प्रवृत्त होता हुआ उस को भी सुशिक्षा से अलंकृत करे। और परस्पर प्रेम सम्बन्धि वार्तालाप में धर्म चर्चा भी करते रहें सदैव काल प्रसन्न मुख से परस्पर निरीक्षण करें क्योंकि–जिस घर में सदैव कलह ही रहता है उस घर की लक्ष्मी नष्ट हो जाती है।

इस लिए धर्म पूर्वक प्रेम पालन के लिए जो कुछ स्त्री की न्याय पूर्वक मांग होती है यदि उस को पालन (पूर्ण) न किया जाए तब अनुचित वर्ताव होने की शंका की जाती है। स्त्रियों को भी उचित है कि–अपने घर की व्यवस्था ठीक देखकर पदार्थों की याचना किया करें और वह भी एक सकोमल और मृदु वाक्यों से करनी चाहिये। क्योंकि –कठिन वाक्यों के परस्पर प्रयोग करने से प्रेम टूट जाता है असभ्य वर्ताव बढ़ जाता है।

साथ ही अपनी भार्या होनहार संतान के सन्मुख कोई भी अनुचित वर्ताव न होना चाहिए क्योंकि जब

बच्चे अपने मां और बाप के अनुचित वर्ताव को देखते हैं
तब उनके मन से अपने मां और बाप का पूज्य भाव हट
जाता है फिर वह उनके साथ अनुचित वर्ताव करने लग
जाते हैं इतना ही नहीं किन्तु कुसंग में पड़ जाते हैं अपने
मां और बाप की शिक्षा की भी परवाह नहीं रखते जिसका
परिणाम आगे के लिये सुखप्रद नहीं रहता। अतएव सिद्ध
हुआ कि-परस्पर अनुचित वर्ताव कदापि न होना
चाहिए।

कभी घर में स्वधर्मी भाई आ जाए तो उसके साथ
सभ्यता पूर्वक वर्ताव करना चाहिए। जैसे शंख श्रावक
के घर में पुष्पकली श्रावक के पधारने पर शंख श्रावक
की धर्म पत्नी "उत्पला" श्राविका उनको आते हुओं को
देखकर सात-आठ पाद (पैर) उनके सामने उनके लेने
वास्ते गई थी और उनको वन्दना नमस्कार किया फिर उनको
आसन की आमंत्रणा की, जब वह शान्ति पूर्वक बैठ गये
फिर उनसे प्रेम पूर्वक पूछा कि आप कैसे पधारे आपका
क्या प्रयोजन है इत्यादि तब उन्हो ने उत्तर में कथन
किया कि मैं शंख जी के मिलने के वास्ते आया हूं वह
कहां पर हैं?

तब "उत्पला" ने उत्तर में कहा कि-उन्होंने आज

पाक्षिक पौषध शाला में पौषध की हुई है–वह आज ब्रह्मचारी और उपवासी हैं अकेले ही बैठे हुये हैं इत्यादि।

इस कथन से यह स्वतः ही सिद्ध होगया कि–श्राविकाओं का स्वधर्मियों के साथ कैसा पवित्र वर्ताव होना चाहिये।

श्राविकाएं–चारों तीर्थों में से एक तीर्थ रूप हैं इनका धार्मिक जीवन बड़े ऊंच कोटिका होना चाहिये।

साधु वा साध्वियों की संगति, शास्त्रों का स्वाध्याय, पति सेवा, गृह कार्यों में कुशलता, धार्मिक पुरुषों वा स्त्रियों से प्रेम अनुकंपा युक्त–वर्ताव करना यह ही श्राविकाओं का सौन्दर्य है। ईर्ष्या–असूया, कलह, चुगली, पर के अवगुणवाद, अभ्याख्यान (कलंक) इत्यादि दुर्गुणों को त्याग देना चाहिये। इसका अन्तिम फल यह होगा कि–इस लोक में सुख पूर्वक जीवन व्यतीत होगा और परलोक में मोक्ष के सुख उपलब्ध होंगे।

विश्वास होना चाहिये। जैसे कि-जिस देवके पास स्त्री है वह कामी अवश्य है क्योंकि-स्त्री का पास रहना ही उसका कामीपना सिद्ध कर रहा है, तथा जिस देवके पास शस्त्र है वह भी उसका देवपना नहीं सिद्ध कर सकते क्योंकि-शस्त्र वही रखता है जिसको किसी शत्रु का भय हो तथा जिस देव के हाथ में जयमाला है वह भी देव नहीं होता है, जयमाला वही रखता है जिसने किसी का जाप करना हो तथा स्मृति न रहती हो जब वह स्वयं ही देव है तब वह किस देव का जाप कर रहा है तथा स्मृति आदि के न रहने से सर्वज्ञता का व्यवच्छेद हो जाता है और कमंडलु आदि के रखने से अशुचिता सिद्ध होती है सिंह आदि पशुओं की सवारी करने से दयालुपना नहीं रहता इत्यादि चिन्हों द्वारा देव के लक्षण संघटित नहीं होते हैं इसी लिये उन्हें देव नहीं माना जाता।

[illegible] नहीं है अपितु [illegible] प्रकार से कर्म [illegible] प्रकाश [illegible] करता [illegible] है।

[illegible] भी [illegible]

(फैसले) होते हैं अतएव वे गुरु पद के योग्य नहीं हैं किन्तु उन कुगुरुओं से बहुत से सद् गृहस्थ अच्छे हैं जो व्यसनों से बचते हैं।

फिर वह हर तरह की सवारियों में भी चढ़ जाते हैं— लोगों के आमन्त्रणों को स्वीकार करते हैं भंडारे जमाते हैं—भंडारों के नाम पर हजारों रुपये लोगों से इकट्ठे करते हैं—सो यह कृत्य साधु वृत्ति से बाहिर है इसलिये ऐसे पुरुष भी गुरु होने के योग्य नहीं हैं।

जिस धर्म में हिंसा की प्रधानता है और असत्य मैथुन आदि क्रियाएं की जाती हैं देवों के नाम पर पशु वध होते हैं वह धर्म भी मानने योग्य नहीं है क्योंकि— उसमें उन के देव हैं वैसे ही उन देवों के उपासक हैं उसमें कवि ने कहा है कि—

> करभाणां विवाहे तु गर्दभास्तत्र गायकाः।
> परस्परं प्रशंसंति अहोरूप महो ध्वनिः॥ १॥

अर्थ— ऊंटों के विवाह में गधे बन गये गाने वाले, फिर वह परस्पर प्रशंसा करते हैं कि आश्चर्य है ऐसे रूप पर [illegible] आश्चर्य है [illegible] गान वालों पर क्योंकि उनमें [illegible] है

[illegible]

उन के उपासक हैं अतएव सिद्ध हुआ कि जिस धर्म में व्यभिचार ही व्यभिचार पाया जाता है वह धर्म भी विद्वानों को उपादेय नहीं है जिज्ञासु जनों को ऐसे धर्मों से भी पृथक रहना चाहिये ।

शुद्ध पुरुषों को चाहिये कि देव उनको मानें जो १८ दोषों से रहित हैं, जीवन्मुक्त और सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं योग मुद्रा में ही देखे जाते हैं, सर्व जीवों को निर्भय करने वाले हैं प्राणी मात्र के रक्षक हैं, ३४ अतिशय और ३५ वाणी के धारक हैं। जो ऊपर उन देवों के शस्त्रादि चिन्ह वर्णन किये गये हैं उन चिन्हों में से कोई भी चिन्ह उन में नहीं हैं ऐसे श्री अर्हन प्रभु देव मानने चाहिये। और गुरु वही होसकते हैं जो शास्त्रानुसार अपना जीवन व्यतीत करने वाले हैं, सत्योपदेष्टा और सर्व जीवों के हितैषी हैं, भिक्षावृत्ति के द्वारा अपना जीवन व्यतीत करते हैं जैसे भ्रमर की वृत्ति होती है उसी प्रकार [illegible] की वृत्ति है इस प्रकार से [illegible] सदा [illegible] रहते हैं [illegible] होता है इसी प्रकार [illegible]

[illegible]

धर्म वही होना चाहिये—जिस में जीव दया हो। क्यों-कि जिस धर्म में जीव दया नहीं है वह धर्म ही क्या है कारण कि—जीव रक्षा ही धर्म का मुख्य अंग है इसी से अन्य गुणों की प्राप्ति होसकती है।

मित्रो! जैन धर्म का महत्व इसी बात का है कि—इस धर्म में अहिंसा धर्म का असीम प्रचार हुआ। अनन्त आत्माओं के प्राण बचाये हिंसा को दूर किया गया।

यद्यपि अन्यमतावलम्बी लोगों ने भी "अहिंसा परमो धर्मः" इस महावाक्य का अति प्रचार किया किंतु वह प्रचार स्वार्थ कोटि में रह गया क्योंकि—उन लोगों ने बलि, यज्ञ, देवादि के वास्ते अहिंसा को विहीत मान लिया इसी कारण से वह लोग इस महावाक्य का पालन न कर सके।

एकेन्द्रियादि कायों में कतिपय जनों ने जीव सत्ता ही नहीं स्वीकार की जैसे—मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति काय में जैन शास्त्रों ने संख्यात, असंख्यात, वा अनन्त आत्माएं स्वीकार की है। किन्तु जब उन लोगों ने उन में जीव सत्ता ही नहीं स्वीकार की तो भला फिर उनकी रक्षा के लिए वे कैसे कटिबद्ध हो होसके थे।

इस प्रकार! जैन शास्त्रों ने एकेन्द्रियादि से लेकर

न्द्रिय पर्यन्त जीवों पर अहिंसा धर्म का प्रचार किया, सो धर्म वही होसकता है जो अहिंसा का सर्व प्रकार से पालन करता हो।

इसके अतिरिक्त जीव रक्षा धर्म में ही, दान, शील, तप और भावना रूप धर्म प्रवेश होसकते हैं अन्य नहीं। क्योंकि—अहिंसा धर्म को मानने हुये ही दान दिया जा सकता है तप किया जाता है, शील पालन होता है, भावना द्वारा तीनों उक्त धर्मों को सफल किया जाता है।

जब दान, शील, तप भी कर लिया किन्तु भावना उस में न धारण की जावे तो ये तीनों ही धर्म सफल नहीं हो सकते हैं अतएव भावना द्वारा कार्यों की सफलता करनी चाहिये।

मुखपुरुषी—जैन धर्म ने अहिंसा धर्म का सेतु रामेश्वर से लेकर विंध्याचल पर्वत पर्यन्त तो प्रचार किया ही था, किन्तु अन्य देशों में भी अहिंसा धर्म का नाद बजाया समय की विचित्रता है कि अब उस पवित्र का प्रचार स्वल्प होने के कारण केवल गुजरात। गुर्जर। मारवाड़, मालवा, कच्छ, पंजाब आदि देशों में ही यह धर्म रह गया है क्योंकि इस धर्म के अमूल्य सिद्धान्त विद्वानों के स्वल्प होने के कारण छिप पड़े हुये हैं।

कि–पिता जी ! आप लक्ष्मी माता से सम्प (प्रेम) का वर मांगो जिस से उसके जाने के पश्चात् घर में फूट और कलह न हो, सेठ जी ने इस बात को स्वीकार कर लिया, फिर रात्री के समय देवी ने दर्शन दिये तो फिर सेठ जी ने वही प्रेम रूप वर मांगा तब देवी ने उत्तर में कहा कि–हे सेठ जी ! जब तुम परस्पर प्रेम होने की याचना करते हो तो फिर मैंने कहां जाना है क्योंकि जहां 'प्रेम' है वहां ही मैं, फिर लक्ष्मी सेठ जी के घर में स्थिर होकर रहने लगी इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि जहां प्रेम होता है वहां सब कुछ ठीक होजाता है इस लिये देव, गुरु और धर्म की पूर्ण प्रकार से परीक्षा करके फिर इसके प्रचार में कटिबद्ध होजाना चाहिये । जब अहिंसा धर्म का सर्वत्र प्रचार किया जायगा तब सदाचार का प्रचार भी साथ ही हो जाएगा । जो सदाचार कि सत् पुरुषों का जीवन है । मोक्ष के अक्षय सुख का देने वाला है ।

चौदहवां पाठ।

श्रीपूज्य अमरसिंह जी महाराज का जीवन चरित्र।

प्रिय सुज्ञपुरुषो ! एक महर्षि की जीवनी से अनेक आत्माओं को लाभ पहुंचता है क्योंकि जनता उसी का अनुकरण करने लग जाती है।

लोगों को जीवनी एक स्वर्गीय सोपान समान बन जाती है परन्तु जीवनी किसी अर्थ को अवश्य रखती हो–

यदि जीवनी सच्चरित्रमयी होवेगी तब वह जगत में पूजनीय बन जाएगी क्योंकि जीवनी के पढ़ने से पाठकों को तीन पदार्थों का ज्ञान होता है। उस समय संसार की क्या गति थी ? लोक अपना जीवन निर्वाह किस प्रकार करते थे ? उस महर्षि ने किस उद्देश के लिए अनेक कष्टों का सामना किया इतना ही नहीं किन्तु उन कष्टों को शान्ति पूर्वक सहन किया अन्त में किस प्रकार वह सफल मनोरथ हुए।

आज आप एक ऐसे महर्षि के पवित्र जीवन का पाठ

करेंगे कि-जिन्होंने पंजाब देश में जैन धर्मोद्योत किया और अपना अमूल्य जीवन संघ सेवा में ही लगा दिया।

यह आचार्य श्री पूज्य अमरसिंह जी महाराज हैं। आप का जन्म पंजाब देश के सुप्रसिद्ध अमृतसर नगर में हुआ था आप के पिता जवाहरात की दुकान करते थे, उस समय पंजाब देश में महाराजा 'रणजीतसिंह' के राज्य तेज से बहुत सी जातियों में सिंह नाम की प्रथा चली हुई थी। आप बाल्यावस्था के अतिक्रम हो जाने पर अति निपुण हो गये विद्या में भी अति प्रवीण हुए। आप का जन्म अमृतसर नामक शहर में १८६२ वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन लाला बुद्धसिंह ओसवाल (भावड़े) गद्दहड़ गोत्रीय की धर्मपत्नी श्रीमती कर्मोदेवी की कुक्षि से हुआ था।

लाला मोहरसिंह और लाला मेहरचन्द्र, यह दोनों आपके बड़े भाई थे आपका परस्पर प्रेम भाव उन्हों के साथ अधिक था, जब आप यौवनावस्था में आये तब आपको पूर्व कर्मों के क्षयोपशम भाव से वैराग्य उत्पन्न हो गया, सर्दैव काल यही भाव आप अपने मन में भावने लगे कि मैं जैन दीक्षा लेकर धर्म का प्रचार करूं जो लोग अन्धश्रद्धा में जा रहे हैं उनका सुपथ में लाऊं।

जब आप के भाव अति उत्कट हो गये तब आपके माता पिता ने आपके इस प्रकार के भावों को जान कर आपके विवाह का उत्सव रच दिया। निज की इच्छा न होने पर भी आप को माता पिता की आज्ञा का पालन करना पड़ा अर्थात् उन्हों ने आप का सियालकोट में लाला गिगलाल (मंड वाले) ओसवाल की धर्मपत्नी श्रीमती आत्मा देवी जी की पुत्री श्रीमती ज्वालादेवी के साथ पाणिग्रहण करवा दिया।

आपका विवाह संस्कार हो गया परन्तु धर्म में आपके भाव और भी बढ़ते रहे फिर पर भी भोगावली कर्मों के प्रभाव से आपको संसार में ही कुछ समय तक रहना पड़ा। आप ओसवालों में एक बड़े प्रसिद्ध जौहरी थे. आप के दो पुत्रियें उत्पन्न हुईं उन का आप ने विवाह संस्कार किया फिर आपके भाव संयम के अतीव बढ़ गये।

इस समय पंजाब देश में पं० [illegible]लाल जी महा[illegible] [illegible]

दीक्षा के लिए देहली में श्रीरामलाल जी महाराज के चरणों में उपस्थित होगये किन्तु रामरत्न जी और जयन्तीदासजी यह भी दोनों आपके साथ ही दीक्षा के लिए तय्यार हुए तब आपको श्रीगुरु महाराज ने संयमवृत्ति की दुष्करता सिद्ध करके दिखलाई किन्तु आपने संयमवृत्ति के सर्व कष्टों को सहन करना स्वीकार कर लिया क्योंकि आप पहिले ही संसार से विरक्त हो रहे थे, और परोपकार करने के भाव उत्कटता में आए हुए थे। निश्चित हो जाने पर देहली निवासी लोगों ने दीक्षा महोत्सव रच दिया तब आपने १८९८ वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन उन दोनों के साथ दीक्षा धारण की गुरुजी के साथ ही प्रथम चतुर्मास दिल्ली में किया।

काल की बड़ी विचित्र गति है यह किसी के भी समय को नहीं देखता अकस्मात दीक्षा के दसमास के पश्चात श्रीमान पण्डित श्री रामलालजी महाराज का स्वर्गवास हो गया, तब आपने शान्ति पूर्वक अपने गुरु भाइयों के साथ देश में विचरना आरम्भ किया और साथ ही विद्याध्ययन करते रहे जब आपने सूत्राध्ययन कर लिया तब आपके पास अनेक जन दीक्षित होने लगे। [illegible] विक्रमाब्द दिल्ली में आपको आचार्य पद प्राप्त हुआ— फिर श्रावक लोग

मे फिर कर जैनधर्म का प्रचार किया, उनके शुभनाम यह हैं जैसे कि–

श्रीस्वामी मुरलाकराय जी महाराज १ श्रीस्वामी गुलाबरायजी म० २ श्रीस्वामी विलासरायजी महाराज ३ श्रीस्वामी रामबक्षजी महाराज ४ श्रीस्वामी सुखदेव जी महाराज ५ श्रीस्वामी मोतीराम जी ६ श्रीस्वामी मोहनलाल जी महाराज ७ श्रीस्वामी रत्नचन्द्र जी महाराज ८ श्री स्वामी खेताराम जी महाराज ९ श्रीखूबचन्द्र जी महाराज १० श्रीस्वामी बालकराम जी महाराज ११ श्रीस्वामी राधाकृष्ण जी महाराज १२।

इस प्रकार आप और आपके सुयोग्य शिष्य धर्म प्रचार करते हुए आपने १९३७ का चतुर्मास अमृतसर में किया चतुर्मास के पश्चात् जंघाबल क्षीण होजाने के कारण श्रावक समुदाय की विज्ञप्ति अत्यन्त होने पर आपने फिर विहार नहीं किया आपके विराजमान होने से अमृतसर में अनेक धार्मिक कार्य होने लगे किन्तु काल की ऐसी विचित्र गति है कि यह महात्मा वा सामान्यात्मा को एक ही दृष्टि से देखता है किसी न किसी निमित्त के सन्मुख [illegible] ही प्राणों को आ घेरता है [illegible] आषाढ़ कृष्णा [illegible] को आपने उपवास किया परन्तु उस

उपचारिका पारणा ठीक न हुआ, तब अपने ज्ञान बल से आयु को निकट आया जानकर जैन मतानुसार आलोचनादि क्रियाएं करके सब जीवों से क्षमापन (क्षमापना) आदि करके दिन के तीन बजे के अनुमान में श्री संघ के सन्मुख शास्त्रविधि के अनुसार अनशन व्रत कर लिया फिर परम सुन्दर भावों के साथ मुख से अर्हन् का जाप करते हुए आषाढ़ शुक्ला द्वितीया दिन के एक बजे के अनुमान आपका स्वर्गवास हो गया।

तब श्रावक संघ ने तारों द्वारा हृदय विदारक करने वाला शोक समाचार नगर २ में दे दिया जिससे अमृतसर में बहुत सा श्रावक और श्राविका गण एकत्र होगया पश्चात् आपके शरीर का बड़े समारोह के साथ चन्दन द्वारा अग्नि संस्कार किया गया आपके विमान पर लोगों ने ०८ दुशाले डाले थे

[illegible] आपके [illegible] आपके नाम [illegible] जैन [illegible] इत्यादि [illegible] प्रकाशन [illegible] [illegible] है।

पाठक जनों को आपके पवित्र जीवन से अनेक प्रकार की शिक्षाएं लेनी चाहियें। आपने जिस प्रकार जैनधर्म का दृढ़ता पूर्वक प्रचार किया था उसी का अनुकरण प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए।

पन्द्रहवां पाठ।

धन्ना शेठ की कथा।
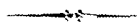
प्रिय सुज्ञ पुरुषों! प्राचीन समय में एक राजगृह नगर बसता था उसके बाहिर एक सुभूमि भाग नाम वाला बाग था जो अति मनोहर था उस नगर में एक धन्ना शेठ बसता था जो बड़ा धनवान् था उसको भद्रा नाम [illegible] धन्ना शेठ के चार पुत्र थे उनके नाम शेठ [illegible] इस प्रकार स्थापन किये थे [illegible] [illegible] धन [illegible] धन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

एक समय की बात है कि धन्ना सेठ आधी रात के समय अपने कुटुम्ब की विचारणा कर रहे थे साथ ही इस बात का भी विचार करने लग गये कि मैं इस समय इस नगर में बड़ा माननीय सेठ हूं, मेरी सर्व प्रकार से उन्नति हो रही है किन्तु मेरे विदेश जाने पर वा रुग्णावस्था के आने पर तथा मृत्यु के प्राप्त होने पर मेरे पीछे मेरे घर के काम काज के चलाने वाला कौन होगा ? इस बात की परीक्षा करनी चाहिये ।

ऐसा विचार करते हुए उन्हों ने जाना कि पुत्र तो सुयोग्य हैं वह भली प्रकार काम चला लेंगे परन्तु गृह सम्बन्धी उनकी स्त्रियों की जांच करनी चाहिये कि वह घर के काम को किस योग्यता से चला सकती हैं तब सेठ जी ने प्रातः काल होते ही अपने सुपुत्रों को बुलाया और उन से कहा कि हे पुत्रो ! तुम तो हर प्रकार से गृहस्थ सम्बन्धी काम करने के योग्य हो मैं तुम से संतुष्ट हूं परन्तु मेरी इच्छा है कि तुम्हारी स्त्रियों की परीक्षा [illegible] तुम उनको पूछ कर [illegible] भी को [illegible] सम्बन्धी [illegible] परीक्षा के लिये उप- [illegible] तुम [illegible] बहुओं को [illegible] उन से कहा कि हे पुत्रियो !

किन्तु उनकी हर समय रक्षा करने लगी ।

जब चौथी बधु ने पांच धान्य ले लिये तब उसने भी नौकरी की तरह विचार किया, किन्तु उन धान्यों को अपने कुल घर के पुरुषों को देकर यह कहा कि-हे प्रिय ! इन पांचों धान्यों को तुम लेजाओ और छोटा सा एक क्यारा बनाकर विधि पूर्वक वर्षा ऋतु के आने पर इनको बीज दो, फिर यथा विधि क्रियाएं करते जाओ जब तक मैं तुम्हारे से धान्य न मांगदूं-तब तक इस क्रम से यावन्मात्र धान्य होते जाएं वे सब बीजते जाओ ।

दास पुरुषों ने इस आज्ञा को सुनकर हर्ष प्रकट किया फिर वे उसी प्रकार पांच वर्ष पर्यन्त करते गए । पांच वर्ष इन पांचों धान्यों की वृद्धि होती गई धान्यों के कोठे भर गये । वे दास पुरुष प्रतिवर्ष सारे समाचार श्रीमती रोहिणी देवी को देते रहे

इस बात का [illegible] अकस्मात् सेठजी [illegible] के समय [illegible] आलिंगन के [illegible] वधुओं की [illegible] हुए हैं अब इनमें [illegible] इन में वृद्धि

की या नहीं तब प्रातःकाल होते ही सेठ जी ने फिर एक बड़ा विशाल भोजन मंडप तय्यार करवाया उस में नाना प्रकार के भोजन तय्यार करवाए गए।

ताम्बूलादि पदार्थों का भी संग्रह किया गया फिर सेठ जी ने अपनी जाति वाले पुरुषों को वा अपनी वधुओं के सम्बन्धी पुरुषों को विधि पूर्वक आमन्त्रित किया जब भोजनशाला में सर्व स्वजनवर्ग इकट्ठे हो गए तब उनको भोजन दिया गया सत्कार करने के पश्चात् उनके सामने अपनी चारों वधुओं को बुलाया।

फिर सेठ जी ने पहली वधु से पांच धान्य मांगे तब उसने अपने धान्यों के कोठे से पांच धान्य लाकर सेठ जी के हाथ पर रख दिये तब सेठ जी ने उसे शपथ देकर कहा कि तुम्हें अमुक शपथ है कि क्या यह वही धान्य है ? तब वधु ने कहा कि हे पिता जी! यह धान्य वह तो नहीं हैं किन्तु मैंने अपने धान्य के कोठों में से लाकर धान्य दिये हैं। तब सेठ जी ने उस वधु को विशेष सत्कार तो नहीं दिया और ना ही कुछ कहा परन्तु उसके सत्य बोलने की प्रशंसा करके चुप हो रहे और उसको बैठने की आज्ञा दी. पीछे सेठ जी ने दूसरी वधु को बुलाया उस ने भी वही धान्य मांगे उस ने भी पहली की

तरह सब कुछ कह दिया तब सेठ जी ने उस को भी बैठने की आज्ञा दी, उस के पश्चात् तीसरी वधू को आमंत्रित किया गया उसने आकर सर्व वृत्तान्त कह सुनाया और कह दिया कि मैं कोई कारण समझ कर दोनों समय इन धान्यों की रक्षा करती रही तब सेठ जी ने तीसरी वधू का सत्कार करके अपने पास ही उसे भी बैठा लिया।

फिर सेठ जी ने चौथी वधू को बुलाया उस से भी वही धान्य मांग लिये गये उस ने सब के सामने यह कहा कि पिता जी! उन धान्यों के लाने के लिये मुझे शकट मिलने चाहियें तब सेठ जी ने कहा कि—हे पुत्रि! यह कैसे? तब उसने जिस प्रकार धान्य लिये थे और उन को बीजा गया था। पांच वर्ष में उनकी कितनी वृद्धि हुई इत्यादि सब वृत्तान्त को कह सुनाया जिस को सुनकर सेठ जी बड़े प्रसन्न हुए और चौथी वधू को बहुत ही सत्कार [illegible] बनाया गया और उसका [illegible]

[illegible] दीक्षा की [illegible] कही पहली [illegible] इसलिये [illegible] विदुष

करता हूं । जो घर में रज, मल आदि पदार्थ हों वह उन को घर से बाहिर गेरती रहे ।

दूसरी पुत्र वधू को मैं भोजनशाला में नियुक्त करता हूं क्योंकि इसने मेरे दिये धान्य खा लिये हैं सो मैं इसको खाने पकाने के काम में स्थापन करता हूं ।

तीसरी वधु ने मेरे दिये हुए पांचों धान्यों की सावधानता पूर्वक रक्षा की है इसलिये इसको मैं कोषाधिपत्नी बनाता हूं । जो मेरे घर में जवाहरात आदि पदार्थ हैं उन की कुंजी इसके पास रहेगी ।

चौथी पुत्र वधु ने मेरे दिये हुए पांचों धान्यों की वृद्धि की है इसलिये मैं इसको सब कार्यों में पूछने योग्य और [illegible] रूप से प्रमाणभूत स्थापन करता हूं ।

[illegible]

पुरुषार्थ करो और अपनी स्त्रियों व बालिकाओं को बुद्धिमती बनाओ यही इस कहानी का सार है।

सोलहवां पाठ।

जैन धर्म

जैनधर्म एक प्राचीन धर्म है हिन्दुस्थान के बड़े २ शहरों (नगरों) बम्बई कलकत्ता में जैनियों की बहुत बस्ती है गुजरात काठियावाड़ मालवा मेवाड़ दक्षिण मारवाड़ मदरास पञ्जाब आदि में जैन लोग बहुत संख्या में बसते हैं जैन जाति विशेष करके व्यापार करने वाली जाति है यही कारण है कि जैन जाति में विद्या की न्यूनता है और इस न्यूनता के कारण से जैनधर्म का प्रचार वर्तमान समय में [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

स्थानकवासियों की ही है दिगम्बर और श्वेताम्बर स्थानकवासी इनमें परस्पर भेद तो थोड़ा सा ही है परन्तु विशेष भेद इस बात का है कि श्वेताम्बर स्थानकवासी तो मूर्तिका पूजन नहीं मानते और अन्य मानते हैं जैनधर्म वालों के बड़े २ प्राचीन हिन्दी गुजराती प्राकृत संस्कृत मागधी आदि भाषाओं की पुस्तकों के भण्डार हैं जो जैसलमेर आदि स्थानों में हैं इनकी बहुत सी पुस्तकें हस्त लिखित होने के कारण वा बड़े २ पुराने पुस्तकालयों और भण्डारों में बंद होने से प्रकट रूप संसार में नहीं फैलीं परन्तु अब इनका प्रकाश देश की सब ही भाषाओं में हो रहा है जिस से जैनधर्म का महत्त्व प्रति दिन बढ़ रहा है जैनधर्म ने जहां और बहुत से उपकार के बड़े २ काम किये हैं वहां संसार में सब धर्मों में उत्कृष्ट महान काम यह भी किया है कि इस धर्म ने

अहिंसा का सच्चा आदर्श

[illegible]

[illegible] तक जीवित और जाग्रत है।

उस करण जैसी मुझ में हो दानवीरता हो ।
गज सुख माल जैसी हो ध्यान धीरता हो ॥

(४)

सादी गिज़ा हो मेरी सादा चलन हो मेरा ।
मैं हूं वतन का प्यारा प्यारा वतन हो मेरा ॥
सच्चा सखुन हो मेरा पक्का प्रण हो मेरा ।
आदर्श जिंदगी हो आत्म भजन हो मेरा ॥
दुनियां के प्राणियों में ऐसा मेरा निबाह हो ।
मुझ को भी इनकी चाह हो उनको भी मेरी चाह हो ॥

(५)

दुनियां के बीच करदूं गुण ज्ञान का उजाला ।
और दूर सब भगादूं अज्ञान का अंधेरा ॥
मैं सबको एक करदूं आत्म का रस चखा कर ।
वाणी पवित्र सबको महावीर की सुना कर ॥
ज्योति में यह करूंगा तन मन लगा के अपना ।
सेवा करूं धर्म की सब कुछ लगा के अपना ॥

आवश्यक सूचनायें ।

(१) जैन धर्म आत्मा का निज स्वभाव है और एक मात्र उसी के द्वारा सुख सम्पादन किया जासकता है—

(२) सुख मोक्ष में ही है जिसको कि प्राप्त करके यह अनादि कर्म मल से संसार चतुर्गति में परिभ्रमण करने वाला अशुद्ध और दुखी आत्मा निज परमात्मस्वरूप को प्राप्त कर सदैव आनन्द में मग्न रहा करता है।

(३) स्मरण रक्खो कि मोक्ष मांगने और किसी के देने से नहीं मिलती उसकी प्राप्ति हमारी पूर्ण वीतरागता और पुरुषार्थ से कर्म मल और उनके कारण नष्ट कर लेने पर ही अवलम्बित है।

(४) स्याद्वाद सत्यता का स्वरूप है और वस्तु के अनन्त धर्मों का यथार्थ कथन कर सकता है।

(५) जैनधर्म ही परमात्मा का उपदेश है क्योंकि पूर्वापर विरोध और पक्षपात रहित सब जीवों को उनके कल्याण का उपदेश देता है और इसी से परमात्मा की सिद्धि और प्राप्ति इस संसार से है

(६) [illegible]

[illegible]

जैनधर्म्म का भेद है यदि उन सब के भाव और उपदेश की रचना की 'ही' 'भी' से बदल दी जाय तो उन्हीं सब का समुदाय जैनधर्म्म है।

(७) मत समझो कि जैनधर्म्म किसी समुदाय विशेष का ही धर्म्म है या हो सकता है मनुष्यों को तो कहे कौन जीवमात्र इसको स्वशक्त्यानुसार धारण कर तद्रूप निज कल्याण कर सकता है।

(८) जैनधर्म्म के समस्त तत्त्व और उपदेश वस्तु स्वरूप प्राकृतिक नियम न्यायशास्त्र सत्यानुष्ठान और विज्ञान सिद्धान्त के अनुसार होने के कारण सत्य हैं।

(९) सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशक देव निर्ग्रन्थ गुरु और अहिंसा प्रवर्तक शास्त्र ही जीव को यथार्थ उपदेश देसकते हैं और इन सब के रखने का सौभाग्य एक-मात्र जैनधर्म्म को ही प्राप्त है

[illegible] जैनी

[illegible]

[illegible]

[illegible]

— • —

सत्रहवां पाठ ।

धर्म प्रचार विषय ।

प्रिय सज्जनों ! जब तक धर्म प्रचार नहीं होता तब तक लोग सदाचारी नहीं बन सकते अतएव सदाचार की प्रवृत्ति के लिये धर्म प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है ।

विद्वान् पुरुषों को योग्य है कि देश कालज्ञ होकर धर्म शिक्षाओं द्वारा प्राणियों को सदाचार में प्रवृत्त कराते रहें यावन्मात्र संसार भर में अन्याय व्यभिचार की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है यह सब धर्म प्रचार के न होने से ही है यदि धर्म प्रचार योग्यता पूर्वक किया जाये तब उक्त प्रवृत्तियें अल्पतर हो जायें अपितु धर्म प्रचार के जिन २ साधनों की आवश्यकता है वे साधन देश कालानुसार प्रयुक्त करने से सफलता को प्राप्त होजाते हैं ।

अब उन साधनों के विषय में यत्किंचित लिखते हैं जैसे कि "उपदेशक" सदाचार में रत धर्मात्मा पूर्ण विद्वान् स्वमत स्वमत और परमत के पूर्णवेत्ता तत्त्वदर्शी मृदु-भाषी प्रत्येक प्राणी के साथ प्रेम भावसे वर्ताव करने वाले

प्राप्ति कर सकते हैं जैसे कि–जैन सूत्रों में भी लिखा है सूत्र रुचि श्रुत के अध्ययन करने से होजाती है जब विधि पूर्वक श्रुत का अध्ययन व स्वाध्याय किया जायगा तब भी धर्म की प्राप्ति हो सकती है जैसे जब श्री देवर्द्धि क्षमा श्रमण महाराज जी ने ९८० में सूत्रों को पत्रों पर आरूढ किया आज उसी का फल है कि जैन मत का अस्तित्व पाया जाता है और उन्हीं सूत्रों के आधार से जैन आचार्यों ने लाखों जैन ग्रन्थों को निर्माण किया जो कि आज कल प्रखर विद्वानों के मान मर्दन करने वाले हैं और जैन तत्त्व को भली प्रकार से प्रदर्शित कर रहे हैं अत-एव देशकालानुसार पुस्तकों और धार्मिक समाचार पत्रों द्वारा भी धर्म प्रचार भली भान्ति हो जाता है किन्तु पुस्तकों और समाचार पत्रों के सम्पादक पूर्ण विद्वान् सचरित्र वाले होने चाहियें क्योंकि पुस्तकों और समाचार पत्रों द्वारा जिस प्रकार धर्म प्रचार हो सकता है उसी प्रकार इनमें अधर्म प्रचार भी हो सकता है इस लिये इनके सम्पादक विद्वान् और शुद्ध चारित्र वाले होने चाहियें साथ ही वे अपनी बुद्धि से पक्षपात को तलाञ्जली देकर इस काम में यदि प्रवृत्त होंगे तब वे यथेष्ट लाभ की प्राप्ति कर सकते हैं यदि वे कदाचार में लगे रहेंगे तब उनका परिश्रम सदा-

संग्रह ही नहीं है तब जिज्ञासु जन किस प्रकार ...
परिचय पा सकते है अतः यत्न और विनयपूर्वक ...
संग्रह व अन्य पुस्तकों का संग्रह जब तक नहीं ...
तक धर्म प्रचार में विघ्न उपस्थित होते रहते हैं ...
मुमुक्षु जन इस प्रकार के भी हैं जो निज व्यय में पु...
मंगवाने में प्रमाद करते हैं या असमर्थ हैं तथा अपने ...
में भिन्न मतों की पुस्तकें मंगवाने में उनके मन में संकोच
रहता है किन्तु जब उनको किसी पुस्तकालय का सहारा
मिल जाय तो वे पठन करने में प्रमाद नहीं करते उन...
बहुत से भद्र जन ऐसे भी होते हैं जो उन सूत्रों या ग्रन्थों
को पढ़कर धर्म से परिचित हो जाते हैं तथा यदि किसी
कारण से किसी उपदेशक का शास्त्रार्थ नियत हो जाय
तब उस समय उस पुस्तकालय से पर्याप्त सहायता मिल
सकती है स्वाध्याय प्रेमियों को तो पुस्तकालय एक स्व-
र्गीय भूमि प्रतीत होती है किन्तु इसका प्रबन्ध ऐसे सुयोग्य
विद्वान् पुरुषों द्वारा होना चाहिये जो कि इस कार्य के
पूर्ण वेत्ता हो शास्त्रोद्धार से नाग सभा की निर्जरा करके
मोक्ष तक ... सकता है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म
प्रचार के ... भी एक मुख्य साधन है।

... में प्रमाद ... व्याख्यानों का

होना भी धर्म प्रचार का मुख्यांग है क्योंकि जो व्याख्यान शैली अपनी सम्प्रदाय में प्रचलित हो रही है उस में नित्य के श्रोतागण ही लाभ उठा सकते हैं किन्तु जो पुरुष उस स्थान से अनभिज्ञ है वा किसी कारण से उस स्थान में आना नहीं चाहते वे धर्म लाभ नहीं उठा सकते इस लिये सब लोगों में धर्म प्रचार हो इस आशा से प्रेरित होकर व्याख्यान का प्रबन्ध ऐसे स्थान में होना चाहिये जहां पर बिना रोक टोक के जनता आ सके और उन में धर्म प्रचार भली प्रकार हो सके. अपितु साधुओं वा उपदेशकों का ऐसे ग्रामों वा नगरों में जाना योग्य है जहां पर धर्म प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता हो क्योंकि वर्तमान काल में ऐसा देखा जाता है कि श्रोतागणों की उपदेशक जन [illegible] धर्मोपदेश श्रवण करते हैं किन्तु श्रोतागण उपदेशकों [illegible] नहीं करते इस ऐसे क्षेत्रों में धर्म प्रचार [illegible] होती [illegible] धर्म प्रचार [illegible] लिये [illegible] सकते हैं [illegible]

शक्ति द्वारा शान्ति पूर्वक सहन करना चाहिये विपक्षियों के प्रश्नों के उत्तर सभ्यता पूर्वक देने चाहियें किन्तु प्रश्नोत्तर में किसी के चित्त दुखाने वाले उपहास्यादि कृत्य न करने चाहियें क्योंकि जब प्रश्नोत्तर में हास्यादि क्रियायें की जाती हैं तब उसकी क्षुद्र वृत्ति प्रतीत होती है अपितु गम्भीरता सिद्ध नहीं होती इसलिये सभ्यता पूर्वक सब से वर्ताव होना चाहिये अपितु ऐसे विचार न होने चाहियें कि यह तो जैनेतर है इनसे सभ्यता की क्या आवश्यकता है ऐसे क्षुद्र वृत्ति वाले पुरुषों के विचार होते हैं गंभीर जीव प्राणी मात्र से सभ्य व्यवहार करते हैं यही मनुष्यत्व का लक्षण है तथा जब किसी से प्रेम ही नहीं है और न ही सभ्य वर्ताव है तो भला धर्म प्रचार की वहां पर क्या आशा की जा सकती है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये सब से प्रेम करते हुए किसी से भी असभ्य वर्ताव न करना चाहिये अपितु प्रत्येक प्राणी के साथ सहानुभूति रखते हुए धर्मोन्नति के साधनों द्वारा धर्मोन्नति करना प्रत्येक प्राणी का मुख्य कर्तव्य होना चाहिये